हिन्दी प्रदीप

मासिक पत्र

विद्या, नाटक, इतिहास, साहित्य, दर्शन, राजसम्बन्धी इत्यादि
के विषय में हर महीने की पहिली को छपता है ॥

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट ह्वै आनन्द भरै ।
बचि दुसह दुरजन बायुसों मणिदीप सम थिर नहि टरै ॥
सूझै बिबेक बिचार उन्नति कुमति सब यामें जरै ।
हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै ॥

जि० २७   } प्रयाग {   जनवरी । फरवरी
सं० १-२   }   {   सन् १९०५ ई०

पं० बालकृष्ण भट्ट सम्पादक और प्रकाशक की आज्ञानुसार

पं० रघुनाथ सहाय पाठक के प्रबंध से

यूनियन प्रेस इलाहाबाद में मुद्रित हुआ

सभायें पुस्तकालय और विद्यार्थियों तथा असमर्थों से अग्रिम १॥)
समर्थों से मूल्य अग्रिम ३।-) ——०*०—— पीछे देने से ४।-)

पिछले अङ्कों की पूरी जिल्द फी जिल्द मे पोस्टेज ३)

—:००:—

जि० २७ । सं० १-२ } प्रयाग { जेनुवरी, फरवरी, सन १९०४ ई०

वर्षारंभ

जीने की आशा भी क्याही प्रलोभन है विशेषतः ऐसे समय जब प्लेग ने भारत में अपनी प्रभुता जमाये हुये निज दूत काल कराल को गेहे २ अने २ जासूसी के लिये नियत कर रक्खा है जो चुन २ कर उन्ही को बटोरे लिये जाता है जो इस संसार में जीते रहते तो क्या २ न कर गुज़रते—नव विकसित कलिका सदृश इस जीव कुसुम वाटिका को अपनी सुमधुर सुगंधि से सुगंधित करते निज कुल और जाति का बहुत कुछ गौरव बढ़ाते परन्तु भारत के दुर्दैव की महिमा के विस्तार

की गीत कहां तक गावैं मानुषी तथा दैवी बिपत्ति सब ओर से इसे घेरे हुये है--कितने प्रिय बन्धु सहृदय मित्रवर्ग जिन के साथ आज हम खेल कूद कर रहे हैं आमोद प्रमोद में लगे हैं कल वे केवल नाम मात्र को शेष रहे-ऐसे नाजुक समय में सब भांति सही सलामत रह निर्विघ्न अपना जीवन सुख से बिताना सर्ब नियन्ता कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ की क्या थोड़ी कृपा है। उसी कृपा का उद्गार यह भी है कि आज हम छब्बीसवां बर्ष समाप्त कर सत्ताईसवें में प्रवेश कर रहे हैं-अब यहां पर हमें कहना केवल इतनाही है कि अपनी और २ बहिनों के समान हमारी हिन्दी के अभी वे दिन नहीं आये कि वंग भाषा और मराठी गुजराती की भांति इसके प्रौढ़ पाठकों की संख्या उतनी हो कि जो हमारा उद्देश्य है और जैसा हमारा प्रौढ़ लेख होता है सब हिन्दी पढ़नेवाले उसे समझ सकें और उसका यथोचित आदर करें-नहीं तो थोड़ी और अधिक सहायता मिलने से या पढ़नेवालों की कुछ और संख्या बढ़ जाने से हम इसे प्रतिमास समय से प्रकाशित कर उन्हें अपने लेख से विनोदित करते-इस लिये कि हम इधर उधर की केवल गप्प मात्र से तो पत्र पूरा नहीं किया चाहते अपिच हमारा उद्देश्य उन्हें प्रसन्न करने का है जो न साक्षर मात्र हैं बरंन सरस और सहृदय हैं जैसा किसी का कथन है

> सरसा विपरीताश्चेत्सरसत्वं न मुंचति।
> साक्षरा विपरीताश्चेद्राक्षसा एव केवलम्॥

सरस को उलट दो तौभी वह सरस का सरस बना रहता है पर साक्षर उलटो तो केवल राक्षस हो जाता है-किसी अच्छे लेखक का वह लेखही क्या कि जो तीर सा हृदय में न आ चुभा और हर्ष गद्गद हो पढ़ने वाले ने प्रशंसा में मस्तिष्क न हिलाया जैसा महा कवि दण्डी ने कहा है॥

किं कविस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मताम्-परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः।

इंगलैन्ड इत्यादि देशों में जिनके नमूने पर हम यहां पत्र आदि अनेक सभ्यता की बातों को चला रहे हैं वहां एक २ पत्रसंपादक संपदकता की बदौलत इतने अमीर बन बैठे हैं कि वहां के नामी ड्यूक और बेरोन का मुकाबिला अपनी सब बातों में कर रहे हैं और गवर्नमेन्ट "राष्ट्र" का समाचार पत्र एक अंग माना जाता है-पत्र संपादक अपनी अनुमति से सल्तनत के इन्तिज़ाम में राजा को समय २ पर बाधित किया करते हैं यहां भी कितने ऐसे भाग्यवान् हैं कि पत्र के द्वारा उनकी इज्जत है और धनी हो गये हैं-अंगरेज़ी राज्यकी प्रथा के अनुसार यह एक उत्तम व्यवसाय या रोज़गार समझा जाता है उसी के अनुसार वे वैसा लेख लिखते हैं और एडवरटाईज़मेन्ट आदि के द्वारा खूब धन कमाते हैं-हम यहां अपने पास का कुछ गांवते हैं तथापि निज भाषा की उन्नति समझ नहीं निरस्त होते और सब के ऊपर तो लिखने का दुर्व्यसन हमें नही रहने देता कई बार हमने चाहा कि इस पिशाची कृत्य का उद्यापन कर बैठैं और इस से पिण्ड छुटावें पर कोई न कोई बात आ जाती है जिस से यावज्जीव के लिये यह गले का हार हो गया है अस्तु-बर्षारंभ के बिनोद में पहले अपने पढ़नेवालों को आज हम नई २ उक्ति युक्ति के कुछ थोड़े से श्लोक उपहार की भांति सुनाया चाहते हैं।

सन्तः क्वापि नसन्ति सन्ति यदिवा जीवन्ति दुखेन ते विद्वान्सोऽपि नसन्ति सन्ति यदिवा मात्सर्ययुक्ताश्चते-राजानोपिनसन्ति, सन्ति यदिवा तृष्णा धन ग्राहिणो दातारोपिन सन्ति-सन्ति यदिवा सेवानुकूलाः कलौ।

इस कराल कलिकाल में ढूंढो तो सच्चे सन्त जिनके आचरण वास्तव में सज्जनता के हैं कहीं नहीं हैं यदि वा हैं तो अनेक दुःख सह कर ज्यों त्यों अपना दिन काटते होंगे-सच है चरित्र पालन करते भले लोगों की सरणी का अनुसरण सहज नहीं है लोहे के चनों का चबाना है किसे पड़ी है कि संसार के अनेक सुखों से वंचित हो सन्त बनने का हौंसिला रक्खे-ऐसाही सच्चे विद्वान् भी इस समय नहीं हैं जो हैं वे मात्सर्य पूरित ईर्षा द्रोह से भरे हैं अपनी विद्या के प्रकाश से दूसरे को दबाना यही उनका उद्देश्य है तत्व निरूपण जो विद्या का मुख्य फल है कहीं छू नही गया—एवम् राजा भी नहीं हैं जो हैं भी वो तिल से तेल निकालने की भांति केवल प्रजा को चूसा चाहते हैं तौभी तृष्णा उन की नही बुझती-दाता भी इस समय न रहे जो हैं भी वो सेवा के अनुकूल फल देनेवाले हैं उनकी बड़ी खुशामद करो तो 'अतिप्रसन्नो दमड़ीं ददाति' देंगे थोड़ा पर नाम इतना चाहेंगे कि उनके नाम की पटह ध्वनि हो जिस में कमिशनर और लाट साहब के कानो तक वह शब्द पहुंचे और उनके लिये कोई उपाधि का वितरण किया जाय--चुपचाप दे किसी मुहताज की ज़रूरत रफा कर देने की तो अब प्रथाही न रही सच है 'तं धिगस्तु कलयन्नपि वांछामर्थिवागवसरं सहते यः' उस दानी को धिक्कार है जो जान गया कि इसे कुछ ज़रूरत है फिर भी अवसर देख रहा है कि मुंह खोल कर मांगें तो हम दें—दूर क्यों जाइये दानी होते तो हमारे पत्र की यह दशा क्यों रहती अस्तु।

बिभीषयति शीतलं जलमहिर्वपुष्मानिव प्रलोभयति कामिनीस्तन इवास्तधूमानलः--सुतासय इवत्विषादिनमणेः सुखं कुर्वते कुटुम्ब कटुवागिवव्यथयते तुषारानिलः

शीतलता के वर्णन का यह श्लोक बहुतही सामयिक और अच्छी उक्ति युक्ति का है-ठंढा पानी जाड़े के दिनों में फुफकारता हुआ देह धारी सर्प की भांति डर दिखाता हैं-दूसरा चरण किञ्चित् अश्लील है इससे उस का अर्थ छोड़ देते हैं-आगे कहता है दिन मणि सूर्य्य का प्रकाश वैसा ही सुख देता है जैसा पुत्र के जन्म में सुख मिलता है-अन्त का चरण बहुतही प्राकृतिक है तुषार के कणों से मिली हुई ठंढी हवा वैसाही दुःख देती है जैसा कुनबे के लोगों की कड़ुई बोल।

नोपदेशं न नियमं न दाक्षिण्यं न साधुताम्।
स्मरन्ति जन्तबः कामं कामस्य बश मागताः ॥

जन्तु मात्र काम से पीड़ित हो न किसी के उपदेश पर कान देते हैं; न कोई नियम उनको नियम बद्ध कर सकता है; न चतुराई चलती है; बड़े २ चतुर चूक जाते हैं; न साधुता निभ सकती है।

अप्यास्ति कश्चिल्लोकेऽस्मिन्येन चित्तमदाद्विपः
नीतः प्रशम शीलेन संयमालान लीनताम।

कवि कहता है ऐसा मनुष्य संसार में कहीं कोई है जिसने मन मतवाले हाथी को अत्यन्त शान्ति शील हो संयम Controle के दृढ़ खूटे में बांध रक्खा हो-सच है 'मनो नियमं शिक्षायां मुनयोपिन पण्डिताः' मन को नियम के बाहर न होने की शिक्षा देने में साधारण मनुष्यों की कौन कहे मुनियों की अक्किल भी गुम हो जाती है।

दुखिताः पर दुःखेषु निर्लोभा दुर्लभेषुच।
बिपक्षेषु क्षमावन्तः सन्तः सुकृत हेतवः

ऊपर के इस श्लोक में शिष्टता शराफत या भलमनसाहत का अन्त है सन्त जो सुकृत के सेतु हैं पराये के दुःख में दुःखी दुर्लभ पदार्थ के सुलभ होने में भी निर्लोभ और शत्रु पर भी क्षमा शील होते हैं।

घनोदय समसुत्सिक्ता सौजन्य तटपातिनी।
लोलं कलुषयत्येव मानसं श्री तरङ्गिणी।

• ऊपर के श्लोक में लक्ष्मी के साथ नदी का रूपक श्लेष गर्भित अच्छा निबाहा गया है॥

प्रज्ञां बिनाशयत्यादौ प्रविष्टो हृदि मन्मथः
दक्षो गेहं समायाति दीपं निर्वाप्य तस्करः

दुज़्द चुं दर सीन आयद अक़्वल ख़ूद
दुज़्द दाना रक़ुनद औवल चिराग़े ख़ानेरा

नासौजयी जितो येन नक्रव्यालमृगाधिपाः
जितं तेनैव येनेह दान्तो मारस्त्रिलोक जित्॥

नहंगो अज़दहाओ शेर नर मारा तो क्या मारा।
बड़े मूज़ी को मारा नफ़्स अम्मारा को गर मारा॥

बर्द्धते मुखसादृश्यमवाप्य हरणीदृशः
क्षीयते तत्तुला मेतुमुभयोरक्षमो विधुः

मह शुद तमामं ताचो रुखे ऊशवद न शुद। काहीद बाज़ ताच में अब्रू शवद न शुद॥

लोको मद्युगजन्मा कृत कृतं कर्मा नमत् धर्मा-इतिहेतो
रिव. कलिना वलिना संपीड्यते साधुः

लोग मेरे युग में जन्म ले बहुधा सतयुग का सा काम कर रहे हैं मेरा कलियुगी धर्म्म उनमें नहीं आया इसी लिये मानो बलवान् कलि से साधु जन पीड़ा पाते हैं।

भूतिर्नीच गृहेषु विप्रसदने दारिद्य कोलाहलो स्वल्पायुः सुकृती च पातक कृतामायु समानां शतम्-दुर्नीतिं तव वीक्ष्य कोपदहनज्वालाजटालोपिसन् किं कुर्मो जगदीश यत्पुन रहं दीनो भवानीश्वरः

नीचों के घर में संपत्ति कर्मनिष्ट ब्राह्मण के घर में दरिद्रता के कारण कांव कांव; भला काम करनेवाले अल्पायु पाप कर्म करनेवाले सौ वर्ष तक जीते रहें यह तुम्हारी दुर्नीति देख क्रोध की अग्नि में जलते हुए हे जगदीश हम क्या कर सकते हैं इस लिये कि हम दीन अकिंचित्कर हैं और आप सब भांति समर्थ ईश्वर हो।

प्रभवार्थाय लोकस्य धर्म प्रवंचनं कृतम्।
यःस्यात् प्रभव संयुक्त : सधर्म इति निश्चयः

लोगों के प्रभव अर्थात् वृद्धि के निमित्त धर्म का प्रवचन किया गया है। तात्पर्य यह कि जिससे जन समूह का उद्भव और उनकी उत्तरोत्तर सब तरह बढ़ती और तरक्की होती रहे वही धर्म्म है तो निश्चय हुआ कि जिस के आचरण या अनुष्ठान से हम सब लोगों के उद्भव या उत्तरोत्तर भलाई में बाधा हो वह धर्म्म नहीं कहा जायगा हमारे यहां के धर्म्म धुरीण जो धर्म्म को ढीले डालते हैं पंक्ति में बैठ वह भोजन में महा अधर्म्म मानते हैं और इस अपनी बात के पोषक

में अनेक धर्म्म शास्त्र के बचन पढ़ते हैं और सिद्ध कर देते हैं कि इससे बढ़ के अधःपात और सदेह नरक जाने के लिये और कोई दूसरा पापही नहीं है-हाँ हमभी यह मानेंगे कि किसी पतित शूद्र अथवा आचार भ्रष्ट के साथ सह भोजन बध। बल्कि ऐसों से संभाषण और संसर्ग में भी महापाप है किन्तु जो अपने सजाति हैं बन्धु हैं एकही सभा या कमेटी के मेम्बर या सभासद हैं जिनके हम एक २ रगो रेशे से वाकिफ़ हैं उनके साथ सह भोजन में हिचक कितना समाज को जर्जरित और छिन्न भिन्न करनेवाला है—बताइये यह उस कोटि का धर्म्म है जिस से हमारा प्रभव या उत्कर्ष हो सकता है-आठ या नौ वर्ष की लड़की ब्याहना समाज में कितना धर्म्म माना गया है कि जिसके पुण्य की सीमा नहीं है किन्तु यह प्रत्यक्ष है कहां तक हम गला फाड़ २ चिल्लाते रहें कि हमारी हिन्दू जाति जो इस भांति तेजोहत और सब तरह पर हीन दीन हो गई उसका मुख्य कारण यही महा अधर्म्म है-जिसे हमारी अन्ध परम्परा बड़ा धर्म्म और कल्याणकारी मान रही है छुआ छूत स्पर्शास्पर्श का बिचार हिन्दू धर्म्म का मूल और स्तंभ स्वरूप है और जिस बुनियाद पर यह बिचार कायम किया गया है कि हेय या दूषित तथा अपवित्र पदार्थ वा मनुष्य की बिद्युत्ति शक्ति उस में से निकल अपने में फैलती है सो बात बिलायत की बनी चीजों में कितनी अधिक पाई जाती है-हम लोग बिलायती चीज़ों की सुन्दरता बारीकी और चटकीलापन पर प्रलोभित हो देश का धन फेंकते हुए उनके संग्रह में तन मन से तत्पर रहते हैं बिलायत की बनी तंजेब आबरवां साटन आदि कपड़ों को बड़े शौक से जब पहिनते हैं उस समय नवाबज़ादों को भी अपने आगे तुच्छ मानते हैं--ये चीजें उन्ही की बनाई हैं जिन्हें हम शास्त्र के अनुसार अपवित्रता का आलय मानते हैं और गो भक्षक मान जिनसे हम घिनाते हैं-सोचने की बात है कि क्या ये बिलायती चीज़ें उन से अधिक पवित्र हैं जिनका संपर्क हम अपने खान पान आदि में बरकाते

हैं और उनके साथ एक पंक्ति में बैठ भोजन में हिचकते हैं—यों तो एक अन्न को छोड़ जो इसी देश की पैदावरी है—बाकी यावत् वस्तु अपने रोज़मर्रे के बर्ताव की सब देश की बनी हम कोई नहीं बर्तते—उसमें कई एक चीज़ें विशेष लक्ष्य के योग्य हैं-जैसा केरोसनतेल, मोम बत्ती साबुन, दियासलाई इत्यादि-इन चीज़ों के बर्तने में हमारे धर्म्मधुरीणों को तनिक भी आगा पीछा नहीं होता यहां तक कि मन्दिरों में जो परम पवित्र स्थान है वहां भी चर्बी की बत्ती स्थान को पवित्र कर रही है-दियासलाई जो हमारे धर्मिष्टों की पूजा की झोलियों में बंधी रहती है फ़ासफ़ारस की बनती है; जो हड्डी का सत्त है; और कभी किसी को इसकी अपवित्रता का ख्याल नहीं होता-पवित्र साबुन का पोतना तो फेशन में दाखिल हो गया है-करोसिन तेल दुर्गन्धि पूरित और महा उपाधि जनक होने पर भी कोई घर न बचा जहां यह काम में न लाया जाता हो-बड़े २ श्रोत्रिय आचारवानों के रसोई घर और देव स्थानों में जलाया जाता है पर बिचार कर देखो तो यह कैसी अपवित्र और रोग पैदा करनेवाली वस्तु है-हम लोग जो अपने को आर्य कहते हैं उनके लिये ऐसी निकृष्ट वस्तु का स्पर्श भी सर्बथा हेय है परन्तु हम ऊपर लिख आये हैं जिस से हमारे प्रभव या उन्नति में बाधा पहुंचे वह धर्म्म नहीं है इन बिलायती चीज़ों के बर्तने से हमारे देश का वाणिज्य बिलकुल मिट गया तिजारत के द्वारा देश का धन इंगलैन्ड जरमनी अमेरिका जापान आदि देशों में ढोया चला जा रहा है हम लोग यहां तक निर्द्धन हो गये कि बहुधा लोग केवल एक जून खाते हैं तो दूसरी जून के लिये उन्हें बड़ी चिन्ता और फिकिर करनी पड़ती है तो सिद्ध हुआ कि बिदेश की बनी चीज़ों को काम में लाय हम कितना और कैसा भारी अधर्म्म कर रहे हैं पर हमारे धार्मिकों की समझ में किसी हीन जाति के लोटे में पानी पी लेना तो बड़ा अधर्म्म है पर इस में कोई अधर्म्म नहीं है बरन बिलायती चीज़ों की नफासत पर मोहित हो जब

उसे अपने काम में लाते हैं उस समय अपने सौभाग्य की सीमा मानते हैं-कणाद का सूत्र हैं 'यतो अभ्युदय निः श्रेयस सिद्धिः सएव धर्म :' जिस से अपना अभ्युदय और कल्याण हो वही धर्म्म है बिदेश की बनी चीज़ों को काम में लाने से अभ्युदय कैसा बल्कि कहां तक हमारा अकल्याण और हानि है इसे बार २ कहना केवल पिष्टपेषण मात्र है-बहुधा ऐसे काम जो धर्म्म के आभास में प्रत्यक्ष अधर्म्म हैं उन पर हमें बड़ी श्रद्धा है पर कितने काम जो वास्तव में धर्म हैं जिनके न करने से हमारी तरक्की और अभ्युदय में बाधा है उसे उपेक्षित किये हैं-प्रिय पाठक महोदय आप हमारे इस लेख को विक्षिप्तप्रलाप न समझ बिचार के देखिये तो एक २ पद एक २ अक्षर ठीक और उचित कह सकते हो पर यह इस समय ऐसा असाध्य रोग हो गया है कि इस रोग के हटाने की कोई उपाय हई नहीं जब हम सोते जागते प्रतिक्षण बिदेशी बस्तुओं को काम में लाते निमेष मात्र भी बिना उनके नहीं रह सकते तब कौन आशा है कि इस से हम बच सकते हैं-नीतिज्ञ लोगों का सिद्धान्त है "व्यापारे बसते लक्ष्मी" सो बिदेशी बस्तुओं के बर्ताव से हमारे देश का व्यापारही न रह गया तब लक्ष्मी कहां रहीं समुद्र पार के देशों में इस समय व्यापार है इस लिये लक्ष्मी भी हमसे बिदा हो सात समुद्र पार जा मन माना बिहार कर रहीं हैं-वहां के निवासियों को देवदूत और फिरिश्ते बना रक्खा है वे प्रतिदिन हमारे लिये नये २ प्रकार का अनुशासन स्वर्गीय आज्ञा के समान हमे सुनाया करते हैं जिस आज्ञा के एक २ अक्षर में लक्ष्मी महाराणी का विभव और उनके अखण्ड प्रताप का उद्‌गार भरा हुआ है-लक्ष्मी देवी का अपमान रूप महापाप कलुषित हम लोग इस अधर्मानुष्ठान के प्रायश्चित में हज़ारों बार गंगा स्नान करते हैं अनेक जप तप व्रत संयम से तन सुखाये डालते हैं पर यह घोर पाप किसी तरह दूर नहीं होता और इस पातक का फल दरिद्रता हमारा दामन नहीं छोड़ती-किसी ने कहा तुम पेड़े ढील२

और लड्डू उबाल २ कर खाया करो तो यह पाप दूर हो जाय; किसी ने कहा तुमने ऋषियो की प्रणाली छोड़ दिया है केवल वेद को इलहाम मान आर्ष ग्रन्थों को पढ़ा करो और पोप लीला में मत फसो तो इस अधर्म्म का बोझ हलका हो जाय; किसी ने कहा जगत् त्राणकर्ता प्रभु ईसा की शरण गहो; किसी ने कहा सेरों साबुन देह में मलते चुटिया कटाय तुम साहब लोगों में दाखिल हो अपने नाम के आगे मिस्टर लिखा करो; किसी ने कहा जात पांत का झगड़ा छोड़ बलाय बलाय जो कुछ मिला करे सब कुछ खा पी लिया करो; किसी ने कहा बिलायत जाय गौराङ्ग ललना को अपनी अर्द्धाङ्गिनी बनाओ My sweet heart; my better half कहते हुए सदा अपनी श्रीमती का मुंह जोहते रहो; किसी ने कहा बिधवाओं को पकड़ २ व्याह डालो; किसी ने कहा व्याह करते जाओ और औलाद पैदा करते रहो पिल्लों की सृष्टि से भारत को भर दो; किसी ने कहा सोशल कानफरेन्स के मेम्बर हो गइकवाड के चेला बन पुरानी रीति नीति को तहस नहस कर डालो—इत्यादि २ सारांश यह कि मरता क्या न करता जिसने जो कहा हमने वही किया पर बूंद के चूके को घड़ा ढरकाने की भांति. किसी से कुछ न हुआ और न वह पाप हमसे दूर हटा—तो निश्चय है कि अब आगे को हमारा प्रभव काहे को कभी होगा हम हमेशा ऐसेही गुलाम और दास बने रहने को ईश्वर के यहां से चुन लिये गये हैं—भवतु।

कृष्ण की ईश्वरता निदर्शन ।

यों तो गीता के अनुसार जिसमें कोई अद्भुत शक्ति हो वहां ईश्वर का कुछ अंस अवश्य मानना पड़ेगा किन्तु भगवान् कृष्ण चन्द्र में त्रिकालज्ञता और ग़ायबगोई इत्यादि बहुत से ऐसे उत्कृष्ट गुण थे कि जिससे उनको बिवश हो ईश्वर माननाही पड़ता है—श्री राम चन्द्र कृष्ण

भगवान् बुद्ध और ईसा संसार में ये ४ व्यक्ति महापुरुष और महा माननीय हो गये हैं जिनके महत्व को स्वीकार न करने में कट्टर से कट्टर नास्तिक की जिह्वा भी स्तब्ध हो जाती है जो किसी धर्म्म का कायल नहीं सब भांति ला मज़हब है वह भी इन चारों महा पुरुषों में किसी एक का नाम कर्ण गोचर होने पर अपनी कुटिल दूषित उक्ति को आज़ादगी के साथ काम में लाने की हिम्मत नही करता—इनमें परमोत्कृष्ट सौजन्य शिष्टता और सुचरित्र के आदर्श स्वरूप महाराज श्री राम चन्द्र ने जो कुछ हमें कर्तव्य है अपने चारूचरित्रों में करके दिखलाया इस लिये कि कहने से कर के दिखलाने में बड़ा असर होता है-एक पत्नीव्रत, पितृभक्ति, पिता की आज्ञा का पालन, भातृस्नेह: आश्रितजन वत्सलता, मृदुभाषिता, सत्य पर दृढ़ता, आदि उत्तम से उत्तम आचरण जो योगीश्वरों को भी अनेक संयम और चिरकाल के अभ्यास के उपरान्त प्राप्त होते हैं सो श्री रामचन्द्र में स्वभावही से थे-न कविकुल मुकुटमाणिक्य बालमीकही ने अपनी फुटही जीभ से एक बार मुक्तकण्ठ हो यह कहा कि राम चन्द्र साक्षात् ईश्वर थे किन्तु एक २ यथा "विष्णुना सदृशोवीर्ये" जैसा व्यासदेव ने "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" रटने की धुन बांध दिया-जो हो पर भगवान् कृष्ण चन्द्र की ईश्वरता के निदर्शन में सारा भारत विष्णु पुराण और श्री मद्भागवत गवाही दे रहे हैं प्रतिवाद करनेवाला पद्मपुराण ब्रह्म वैवर्त और भागवत को गप्प मानले तौभी विष्णु पुराण और भारत उनको ईश्वर सिद्ध करने में क्या कम हैं-जब भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जी ऐसे उपदेष्टा महातार्किक शिष्य अर्जुन की शंकाओं को हटाते २ बहुत आगे बढ़ गये अथवा तर्क की अन्तिम सीमा तक पहुंचे तब भगवान् ने पास बैठे अर्जुन से कहा 'मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय', हे धनंजय तुम इस बात को निश्चय जान लो कि इस संसार मेंही नहीं वरन अखिल ब्रह्माण्ड में मुझ से ऊपर कुछ नहीं है-जो लोग कृष्ण को

ईश्वरांश न मान उन्हें केवल योगीश्वर कहते हैं वे टुक इस बात पर ध्यान दें कि योगी जो सदा सत्य की खोज में रहते हैं वे कभी असत्य व्यवहार नहीं कर सकते और करैं तो दाम्भिक समझे जांयगे-यदि श्री कृष्ण भगवान् ईश्वर का अवतार न हो केवल योगीश्वर रहे तो उनका यह कहना कि मुझ से परे कुछ नहीं है सरासर असत्य व्यवहार हुआ किन्तु गीता में कृष्ण भगवान् ने अपना परात्पर होना केवल इस ऊपर केही बाक्य में नहीं प्रगट किया किन्तु स्थान २ पर बार २ अर्जुन को बांधन कराते गये हैं कि 'मन्मनाभव' 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' 'न मे।ध्यति विनश्यति' 'मोक्षयिष्यामि माशुच' इत्यादि २ अर्थात् हे अर्जुन तुम एकाग्र मन से हमी को भजो-जो मुझे भजते हैं मैं उनका योग क्षेम करता रहता हूं-मेरी बात न सुनोगे तो नाश को प्राप्त होगे-तुम कुछ सोच न करो हम तुम्हारा मोक्ष कर देंगे-ये सब बाक्य बड़े दावे और जोश के साथ कहे गये हैं जिनमें उनकी त्रिकालज्ञता बराबर झलक रही है-बिना कुछ पूंजी पास रहे ऐसे दावे के साथ कौन बोल सकता है-द्रौपदी के चीर हरण समय स्मरण करतेही तत्क्षण द्वारिका से आय द्रौपदी की लाज रखना आदि कितने उदाहरण भगवान् कृष्ण चन्द्र की ग़ायब गोई के हैं पर यह सब उन के लिये हैं जो सरल चित हो विश्वास की भूमि पर चल रहे हैं-कुटिल कठोर अविश्वासी को तो एक बार ईश्वर स्वयम् प्रगट हों अपनी लोकातीत महिमा की कोई करामात दिखलावें, तब भी वह न मानेगा-बुद्ध और ईसा के सम्बन्ध में हम फिर कभी लिखेंगे।

प्राचीन ग्रन्थकार ।

धनंजय

भोजराज के पितृव्य धारा नरेश मुञ्ज की सभा के रत्नों में से धनंजय भी एक हैं । इनका रचित दश रूपक नाम ग्रन्थ प्रसिद्ध है । ग्रन्थ की समाप्ति में धनंजय लिखते हैं ।

बिष्णोः सुतेनापि धनञ्जयेन। बिद्वन्मनो राग निबद्ध हेतुः
आविष्कृतं मुञ्ज महीश गोष्ठी वैदग्ध्य भाजा दश रुपमेतत्॥

जिस से विदित होता है कि इनके पिता का नाम बिष्णु था और ये मुञ्ज के समकालीन तथा उनके सभासद थे। भोजराज का समय लोगों के निर्णयानुसार सन् ९९७ ई० से १०५१ ई० तक पूर्व में उल्लिखित हो चुका है। उनके पितृव्य होने के कारण मुन्ज का समय उनसे पूर्व ठहरा अर्थात् ख्रीष्टीय १०वीं शताब्दी का अन्तिम भाग मुञ्ज तथा उन के समसामयिक धनंजय कवि का भी होवेगा। धनंजय के समकालीन और कवियों के नाम पद्मगुप्त, धनिक, हलायुध आदि हैं। जिनमें से पद्मगुप्त तो नव सहसाङ्कचरित काव्य के रचयिता हैं। धनिक धनंजय के भाई हैं उन ने भी अपने पिता का नाम बिष्णु लिखा है। हलायुध तो एक प्रसिद्ध कोषकार हैं जिनका उल्लेख जहां तहां मल्लिनाथ करते हुए देखने में आते हैं। पर ये हलायुध वे हैं वा नहीं इस में सन्देह है।

धन्वन्तरि।

महाराज बिक्रम की सभा के नवरत्नों में से इनका नाम पहिले लिखा मिलता है जिससे इनकी बिशेष बिद्वत्ता और योग्यता के बिषय में सन्देह नहीं रह जाता। मन्दराचल से मथे जाने पर समुद्र से जो १४ रत्न निकले उन में अमृत का कलश हाथ में लिये धन्वन्तरि का भी उल्लेख मिलता है। पुराणों तथा हरिबंश में धन्वन्तरि काशीराज प्रसिद्ध हैं। धनवन्तरि काशी में रहते थे और बृद्ध काल का कूप आज तक काशी में उनका स्मारक बना हुआ है। यह कूप मुहल्ला दारा-नगर में मृत्युञ्जय जी महादेव के मन्दिर के पास है। लोग ऐसा भी कहते हैं कि धनवन्तरि बैद्य परलोक सिधारते समय अपनी गुणकारी

औषधियों को वृद्ध काल के कुएं में छोड़ गये जिसके प्रभाव से अब तक उस कुएं का पानी बड़ा आरोग्य वर्द्धक है। निदान धनवन्तरि बैद्य काशी के निवासी और एक अति प्राचीन व्यक्ति सिद्ध होते हैं। कुछ लोगों का मत है कि येही धनवन्तरि बैद्य बिक्रमादित्य के सभा रत्न और प्रसिद्ध कवि थे। पर इस में कुछ प्रमाण नहीं मिलता है॥

मेरी समझ में तो धनवन्तरि बैद्य और धनवन्तरि कवि भिन्न जन हैं। उस में से बैद्य राज तो पौराणिक समय के प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। जिसका कि समय खीष्ठ के पीछे किसी भांति होही नहीं सकता और न कवियों के बीच उनके उल्लेख करने का मेरा अभिप्राय है। पर जो धनवन्तरि कवि हैं वे बिक्रम के सभा रत्न उज्जयिनी के निवासी और खीष्टीय छठवीं शताब्दी के व्यक्ति हैं ये कालीदास घटकर्पर आदि के समकालीन हैं। इनका रचित कोई ग्रन्थ देखने वा सुनने में नहीं आया। नव रत्न के श्लोकों में इनका रचित श्लोक भी मिलता है जिससे अनुमान होता है कि यह अद्भुत कवि थे।

धनिक।

ये बिष्णु कवि के पुत्र और धनंजय के भाई हैं। धनंजय रचित दश रूपक पर दशरूपकावलोक नामक तिलक इन्हीं ने लिखा है। इन ने निज रचित ग्रन्थ में विद्ध शाल भञ्जिका के श्लोक उदाहरण में उठाये हैं जिससे सिद्ध होता है कि राजशेखर इनसे पहिले हो चुके हैं। दशरूपकावलोक में इनने स्वरचित पद्य भी लिखे हैं तथा पद्म गुप्त और रुद्र इन कवियों का भी नाम लिखा पर इनमें से पद्म गुप्त तो राजा मुञ्ज के सभा रत्न हैं और धनञ्जय के साथ इनका उल्लेख किया जा चुका है। और रुद्र कदाचित् काव्यालङ्कार कर्त्ता रुद्र ही होंगे उनका समय लोगों ने सन ८५० ई० अनुमान किया है। शृङ्गार

तिलक के रचयिता रुद्र भट्ट कदाचित् येही काव्यालङ्कार कर्त्ता रहे हों पर इसका पक्का प्रमाण मिलना दुर्घट है ॥

धर्म्म दास ।

काव्यसंग्रह में इनका रचित बिदग्ध मुख मण्डन नामक ग्रन्थ छपा है जिसके मङ्गलाचरण में बुद्ध देव की स्तुति की गई है ॥

सिद्धौषधानि भय दुःख महापदानां ।
पुण्यात्मनां परम कर्ण रसायनानि ।
प्रक्षालनैक सलिलानि मनोमलानां ।
शौद्धोदने: प्रवचनानि चिरञ्जयन्ति ॥

जिससे अनुमान होता है कि ये बुद्ध के मानने वालों में से होंगे । पर इनका निवास स्थान वा समय इनके रचित ग्रन्थों से बिदित नहीं हो सकता । विदग्ध मुख मण्डन तो एक प्राचीन ग्रन्थ जान पड़ता है । और संभव है कि ये कवि उस समय के होंगे जब कि भारत में बौद्ध धर्म्म का प्राबल्य सातवीं आठवीं शताब्दी में भारत में रहा होगा ऐसा इतिहास से सिद्ध होता है और जब तक भगवत्पाद शङ्कराचार्य ने बौद्धों को शास्त्रार्थ में परास्त न किया तब तक वे भारत में बढ़ते गये । यदि धर्म्मदास बौद्धों के प्राबल्य काल में सब से पिछले माने जावें तो उनका समय शङ्कराचार्य के तनिक पूर्व हो सकता है और हरि मोहन प्रामाणिक के कथनानुसार उस समय मगध देश में बौद्ध मत का बिशेष प्रचार ठीक मान लिया जावे तो संभव है कि वे कवि मगध के निवासी रहे होंगे । इनका समय अनुमान से ख्रीष्टीय आठवी शताब्दी के पूर्व मान लिया जा सकता है ।

धावक।

श्रीयुत महाशय पण्डित ईश्वर चन्द्र विद्या सागर लिखते हैं कि-"ऐसी किंबदन्ती प्रचलित है कि धावक नाम किसी कवि ने रत्नावली और नागानन्द नाम नाटक बनाये। राजा श्रीहर्ष ने धन दे कर धावक को अपनी ओर झुका के उन्हें परितुष्ट किया और इन दोनों नाटकों को अपने नाम से प्रचलित करवाया। प्रसिद्ध और मुख्य अलङ्कार शास्त्र जाननेवाले पण्डित मम्मट भट्ट के लेख से भी यही बात पक्की होती है पर धावक और राजा श्री हर्ष इन दोनों के समय में सहस्र से भी अधिक वर्षों का अन्तर पड़ता है। दोनो एकही समय के जन नहीं हो सकते। कालीदास विरचित मालविकाग्निमित्र नाटक की प्रस्तावना में प्राचीन नाटक लिखने हारों के बीच धावक का भी नाम लिखा मिलता है। इसके अनुसार धावक विक्रमादित्य के भी बहुत पूर्व प्रकट हुए जान पड़ते हैं। अत एव यह किंवदन्ती और उसका मूल स्वरूप मम्मट का भी सिद्धान्त ठीक नहीं जंचता। और फिर भी श्री हर्ष का एक अच्छे कवि होना और सब देश की भाषा का जानना प्रमाणिक इतिहास ग्रन्थ से सिद्ध होता है तो निर्मूलक किंवदन्ती तथा मम्मट का लेख संभालने के लिये किसी दूसरे धावक कवि की कल्पना करके श्री हर्ष की कवि विषयक कीर्त्ति का उड़ा देना किसी रीति से भी न्याय्य नही जान पड़ता"

ऊपरोक्त मत से प्रकट होता है कि धावक का समय विक्रम से भी बहुत पूर्व रहा होगा पर ध्यान रखना चाहिये कि मालविकाग्नि की केवल दो एक प्रतियों में धावक नाम मिलता है। भासक, धावक का नामान्तर होना संभव नहीं है। भासक के स्थान में भूल से लेखक धावक लिख गया हो तो कदाचित् संभव है। ऐसे लेखकों के प्रमाण से मम्मट की उक्ति की भूल निकालना श्लाघ्य नहीं है। मेरी समझ में

मम्मट का कथन ठीक जान पड़ता है क्योंकि काव्य प्रकाश के टीकाकारों ने यही किंवदन्ती उठाई है जिसे विद्यासागर महाशय झूंठी ठहराते हैं। प्रत्युत जिस श्री हर्ष से धावक से ग्रन्थ बनवाया वह कश्मीर का राजा नहीं है किन्तु कान्यकुब्ज का वह हर्ष वर्द्धन है जिसके यश का वर्णन बाण भट्ट ने हर्ष चरित में किया है। यदि यह बात ठीक हो तो धावक कवि बाण भट्ट के समकालीन सिद्ध होते हैं और विद्यासागर की बात कट जाती है॥

निदान धावक का समय ख्रीष्टीय सातवीं सदी के आरम्भ का भाग अनुमित होता है॥

धोयी।

जयदेव गीत गोविन्द में 'धोयी कविक्ष्मापतिः' ऐसा लिख के धोयी की प्रशंसा की है इस में संशय नहीं कि ये एक अच्छे कवि थे। इनका रचित ग्रन्थ पवन दूत नामक है जिसका बिषय बिलकुल काली दास के मेघ दूत सा है। इस ग्रन्थ में कुवलयवती नाम नायिका ने पवन द्वारा अपने प्राण प्रिय राजा लक्ष्मण के पास अपने बिरह का सन्देश भेजा है। इस में सन्देह नहीं कि यह राजा लक्ष्मण बङ्गाल का सेन बंशी राजा लक्ष्मण सेन हैं जिसके सभासद जयदेव, धोयी, गोबर्द्धन, शरण, उमापति धर आदि थे। अतएव उन सब कवियों की नाईं धोयी भी बङ्गाल देश के निवासी होंगे लक्ष्मण सेन के पिता का नाम बल्लाल सेन था जिसने सन १०८१ ई० में दान सागर नाम ग्रन्थ रचा। जयदेव आदि का समय ख्रीष्टीय १२ सदी का पूर्व भाग पहिले निर्णीत हो चुका है और उसी के अनुसार धोयी कवि का समय निश्चय किया जा सकता है। अर्थात् धोयी का समय भी सन ११०० ई० से ११५८ ई० तक माना जा सकता है॥

धोयी का यह श्लोक प्रसिद्ध है।

इक्षुदण्डं कलानाथं भारतं चापि वर्णय।
इति धोयी कविर्ब्रूते प्रतिपर्वरसायनम् ॥

नागो जी भट्ट।

ये महाशय महाराष्ट्र ब्राह्मण काशी के निवासी एक प्रसिद्ध वैयाकरण हैं। इनके पिता का नाम शिव भट्ट और माता को नाम सती था। ये महाशय शृङ्गबेर पुर (सिंगरौर) के राजा राम सिंह के आश्रित थे और सिद्धान्त कौमुदीकार भट्टो जी दीक्षित के पौत्र हरि दीक्षित के शिष्य थे। परिभाषेन्दु शेखर आदि व्याकरण ग्रन्थों के टीकाकार वैद्यनाथ बाल भट्ट इन्ही नागो जी भट्टो के शिष्य हैं। इनके बनाये बहुतेरे ग्रन्थ जिनमें से वृहन्मञ्जूषा, लघुमञ्जूषा, लघुशब्देन्दुशेखर, परिभाषेन्दु शेखर, लघुशब्दरत्न आदि व्याकरण ग्रन्थ, प्रायश्चित्तेन्दु शेखर, आचारेन्दु शेखर, तीर्थेन्दु शेखर, श्राद्धेन्दु शेखर आदि बारह शेखर ग्रन्थ और अनेक ग्रन्थों की टीका आदि हैं। इन टीकाओं में से बाल्मीकीय रामायण पर रामाभिरामं टीका और काव्य प्रदीप पर उद्योत नामक टीका लोगों को सुपरिचित हैं। सुनने में आता है कि सोलह वर्ष की वय तक इनने कुछ विद्याभ्यास न किया। पीछे किसी के उपदेश से वागीश्वरी का जप करके बड़ी विद्या प्राप्त की। इनका समय खीष्टीय १७वीं शताब्दी लोगों ने स्थिर किया है॥

नारायण

मुहूर्त मार्त्तण्ड नामक जो संस्कृत में ज्योतिष् का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है उसके रचयिता नारायण हैं। इन्हीं महाशय ने इस निज रचित ग्रन्थ पर मार्त्तण्ड बल्लभा नाम एक टीका भी की है। पं० सुधाकर जी द्विवेदी

के मत से इन ग्रन्थों का निर्माण काल शाके १४९३ (वा सन् १५७१) और शाके १४९४ (सन् १५७२ ई०) है। यही समय स्वयं नारायण ने अपने ग्रन्थ में लिखा है। ग्रन्थ में अपना कुछ विशेष परिचय भी इनने दिया है यथा—मुहुर्त्त मार्त्तण्ड के अन्त में

श्रीमत्कौशिक पावनो हरिपद द्वन्दार्पितात्मा हरि स्तज्जो ऽनन्त इलासु रोचित गुणो नारायणस्तत्सुतः। रव्यातं देव गिरेः शिवालायमुदक् तस्मादुदक् टापरे ग्रामस्तद्वसतिर्मुहूर्त्त भवनं मार्त्तण्ड मत्राकरोत् ॥

जिससे विदित होता है कि इनके पिता का नाम अनन्त और निवास स्थान देव गिरि से कुछ दूर पर टापर नाम एक गांव था। सन् १५७१ ई० और सन् १५७२ ई० में ग्रन्थ बनाने से इनका समय खीष्टीय १६वीं सदी का पिछला भाग मान लेने में कुछ भी बाधा नहीं हो सकती।

निम्बादित्य।

वैष्णवों के चार प्रसिद्ध सम्प्रदायों का नाम पद्मपुराण में लिखा मिलता है उन में से पहिला रामानुज संप्रदाय है जो विशिष्टाद्वैत वाद (अर्थात् ब्रह्म का परिणाम जगत् उसी प्रकार से है जैसे दूध का दही) के अनुयायी हैं। दूसरा मध्व सम्प्रदाय है जिसके मत में ब्रह्म और जीव भिन्न २ हैं। तीसरा विष्णु स्वामी का संप्रदाय मध्व' से मिलता हुआ है दोनों भेद वादी हैं। चौथा वैष्णवों का सम्पदाय इन्हीं निम्बादित्य का प्रवर्त्तित है जिसे लोग भेदाभेद वाद कहते हैं। इनके मतानुसार जैसे डाल पत्ते आदि वृक्ष से भिन्न हैं और अभिन्न भी वैसे ही जीव और ब्रह्म भिन्न भी हैं और अभिन्न भी॥

इनका नाम निम्बादित्य पड़ने का यह कारण सुनने में आता है कि कोई जैन सन्यासी उनसे शास्त्रार्थ करने आया और वादा विवाद करते २ सांझ हो गई। जब जैन संन्यासी ने सांझ हो जाने पर भाजन न करने का विचार बांधा तब इन्हीं आचार्य ने नीम के पेड़ पर सूर्य को रोक रक्खा जब तक कि सन्यासी ने अपना भोजन प्रस्तुत करके खा न लिया। कुछ लोग वर्णन करते हैं कि जब सन्यासी ने सांझ होने पर उपवास करने का प्रस्ताव किया तब निम्बादित्य ने नीम के पेड़ पर चढ़ के उन्हें सूर्य देखला कर कहा कि अभी सांझ नहीं हुई है। नीम के पेड़ पर से सूर्य को देखला देने वा वहां पर सूर्य को रोक रखने से इन आचार्य का नाम निम्बादित्य वा निम्बार्क पड़ा॥

निम्बादित्य के रचित ग्रन्थ का नाम धर्माब्धिबोध है। मथुरा के पास ध्रुव तीर्थ नाम का स्थान है वहीं पर निम्बादित्य की गद्दी है। लोग कहते हैं कि उनके गद्दी पर उनके शिष्य हरि व्यास के सन्तान आज तक विराजमान हैं। ये लोग निम्बार्क स्वामी का समय १४२० वर्ष से भी पूर्व बताते हैं पर ऐसा तो होही नहीं सकता कि तीसरे वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक विष्णु स्वामी सन १५७८ ई० में वर्तमान थे तो निम्बादित्य अवश्य उनके पीछे हुए होंगे। अतएव इनका समय १६वीं सदी का पिछला वा १७वीं सदी का प्रारम्भ भाग मान लिया जा सकता है। इनके शिष्यों के नाम केशव भट्ट और हरि व्यास है॥

नील कण्ठ

ये महाशय एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। इनकी बनाई ताजिक नील कण्ठी नाम पुस्तक का पृथिवी में विशेष आदर है। इनके पिता का नाम अनन्त और पितामह का नाम चिन्तामणि था। प्रसिद्ध दैवज्ञ राम जिन्होंने मुहूर्त चिन्तामणि ग्रन्थ बनाया इन्हीं के कनिष्ठ भाई हैं।

नील कण्ठ के पुत्र गोबिन्द भी एक प्रसिद्ध ज्योतिषी हैं जिनने मुहूर्त्त चिन्तामणि की पीयूषधारा नाम टीका लिखी है ग्रन्थारम्भ में ये अपने पिता का बर्णन इस प्रकार से करते हैं ॥

सीमामीमांसकानां कृतमुकुतत्रयः कर्कशस्तर्कशास्त्रे ज्योतिः शास्त्रेच गर्गः फणिपति भणिति व्याकृतौ शेषनागः। पृथिवी शाकब्बरस्य स्फुरद तुल सभा मण्डनं पण्डितेन्द्रः साक्षात् श्री नीकण्ठः समजनि जगती मण्डले नील कण्ठः

जिससे स्पष्ट है कि ये मीमांसक नैयायिक ज्योतिषी श्रोर वैयाकरण थे । तथा अकबर बादशाह के सभासद् भी थे । इनका निवास स्थान बिदर्भ देश और उनकी स्त्री का नाम पद्मा था ॥

अकबर बादशाह के समकालीन होने के कारण इनका समय १६वीं शताब्दी खीष्टीय का पिछला भाग अनुमित होता है ॥

नाक

नाक निगोड़ी भी क्याही बुरी बला है जिसके नहीं तो उसका फिर जीनाही क्या कहावत है "नकटा जिया बुरे हवाल"—है तो न जानिये क्या २ फसाद बरपा करती है ज़रा २ सी बात में इसके कट जाने का डर लगा रहता है-नित्य के भोजनाच्छादन में बड़े संकुचितभाव से रहते हैं निहायत तंग दस्त फटे हाल से ज़िन्दगी पार कर रहे हैं यहां लो कि पेट भर खाते तक नहीं मोटा झोटा पहिन रूखा सूखा खा पी किसी तरह गुज़ारा करते हैं पर नाक की जगह राजा करन से उदार हो श्री खोल शाह खर्च बन बैठते हैं-पास न हुआ तो कर्ज़ अपने ऊपर लाद लेते हैं बर्षों तक बरन ज़िन्दगी भर ऋण से उद्धार नहीं पाते पर बिरादरी और पंच के बीच नाक नहीं कटने देते गरदन कट जाओ बला से पर नाक न कटने पावे-चोखे लोग आन वाले नाक पर रख देते हैं पर

हेठी नहीं सहते भगवान् ऐसों के नाक की लाज रख भी देता है-भटक कर इधर उधर न मुड़ें बराबर नाक के सौहें सीधे चले जांय दूर से दूर मंज़िल को तै कर ठिकाने पर अन्त को पहुंचेहीं गे तब हमारे और आप में केवल नाक मुंह का बल रहा इस लिये कि उसी अपने जीवन की मंज़िल तक आप भी अन्त को पहुंचे सही पर ज़िद्द में आय किसी बुज़ुर्ग का कहना न मान अपने मन की कर बहुत भटकने के उपरान्त-हम अपनी मंतिक और तकरीर के दखल को बालाय ताक कर सरल सीधे भाव से किसी आप्त महानुभाव को अपने लिये रहनुमा करनेवाला मान बिश्वास की लैन डोरी पर सीधे चले गये कोई कठिनाई रास्ता में हमें न झेलना पड़ा।

बड़ा कुनबा है पोते और नातियों की गिन्ती दरजन और कोड़ियों में की जाती है बुढ़ऊ जो भागवानी का तगमा बांधे हुए हैं गृहस्थी के इन्तिज़ाम और बहू बेटियों की देख भाल में ज़िन्दगी का ओर होता जाता है चादर के चार खूंट हैं इत्तिफाक से एक कोना मैला हो गया जात बिरादरी के लोगों ने छोड़ दिया हुक्का पानी पंच की भाजीबन्द हो गई-बुढ़ऊ बड़े चपकुलिश में पड़े हुए हैं बिरादरी के एक २ आदमी की खुशामद में लगे हैं नाक घिसते २ और नकघिर्री करते २ नाक की नोक खिआय गई पर किसी का मुंह सीधा नहीं होता-बड़ा भारी डाड़ देने पर लोगों ने उन्हें बिरादरी में लेना मंज़ूर भी कर लिया तो भाजी जो बांटी गई उसमें लड्डू कुछ छोटे थे लोगों ने नाक सा छिड़क उसे लौटा दिया और नाक भौं,सिकोड़ने लगे बूढ़े का किया धरा सब नष्ट हो गया हाथ मल पछताता रह गया-इत्यादि इस नाक की लाज निबहने में न जानिये कितने झगड़े रहते हैं जिससे बड़े कुनबे वाले गृहस्थ का यावज्जीव पिण्ड नहीं छूटता ईश्वर की बड़ी कृपा है जिसकी अन्त तक प्रतिष्ठा पूर्वक निभ जाय और नाक की नोक न झरने पावे-समाज को छिन्न भिन्न करने में जहाँ और बहुत सी बातें हैं उनमें नाक निगोड़ी भी एक है॥

राम लीला नाट्यमण्डली।

घुणाक्षर न्याय से बहुधा असंभव भी संभव और असाध्य बात भी सुसाध्य हो जाती है पर तभी जब कोई धुन बांध नोम सेतुआ ले उसके पीछे पड़ता है-दृढ़ अध्यवसाय न रहने से बहुधा लोग यत्न करने पर भी पूरी तरह कामयाब नही होते-यहां मुद्दत से कुछ लोग यत्न कर रहे थे कि नाटक की एक मण्डली कायम करैं पर बीच में थोड़ा भी बिघ्न आ पड़ने से सब लोग निरस्त हो जाते थे-बिघ्न आ पड़ने के अनेक कारण होते थे बड़ा कारण अगुआ बनने का था-हम अपने एक साधारण बिद्यार्थी को धन्यबाद देते हैं जो लोगों के अनुत्साहित होने पर भी अनेक कठिनाइयों को झेल राम लीला नाट्य मंडली के नाम से एक दल अभिनय करनेवालों का कायमही तो कर डाला और ३ रात तक बरांबर रामायण को बड़ी सफाई के साथ नाटक के आकार में अभिनय किया जो दर्शकों को बहुतही रुचा-यहाँ राम लीला का दे। दल है एक खत्रियों का दूसरा अग्रवालों का जिन में राज गद्दी के उत्सव में सदा से बेश्याओं का नाच हुआ करता था-इस मंडली के अभिनय पर रीझ अग्रवाल महाशयों के उत्साह से प्रोत्साहित हो राम लीला मंडली ने नांच की जगह वहां अपनी मंडली का फिर अभिनय किया सात्विकी प्रकृतिवालों हीसे ऐसी संभावना हो सकती है कि नांच रंग से मुंह मोड़ ऐसे काम में रुचि प्रगट करैं जिससे अपनी भाषा की उन्नत्ति अपने देश की पुरानी रीति नीति की झलक प्रगट हो-इस लिये अग्रवाल भाई धन्यबाद के पात्र हैं जिनमें यह सद्विवेक उदय हुआ-क्या अच्छा होता कि जहां कहीं इस तरह के उत्सव की कोई बात उपस्थित हो वहां जीवा रूपाओं को रूपया न दे लोग ऐसे २ अभिनयों में धन को व्यय करैं-कोमल चित्त वाले बालक तथा और २ लोग जो नांच रग के दुर्व्यसन में पड़ खराब खस्ता हो रहें हैं नाटकों के अभिनय के द्वारा उत्तम शिक्षा पाय

अपने को सुधारैं और कुछ उपदेश गांठ बाधैं पर सो काहे को कभी होना है ॥

इस मण्डली का दूसरा अभिनय १ जनवरी को भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र रचित सत्य हरिश्चन्द्र का किया गया—सूत्रधार ने अपने पाठ में हिन्दी की वर्तमान् दशा को सूक्ष्म रूप में अच्छा दरसाया और सिद्ध कर दिया कि भाषा की उन्नति में एक मात्र नाटक बड़ा सहारा है उपन्यासों की भरमार और नये नाटकों का लिखना एक दम गुम हो जाना अभिनय के बन्द होने से हुआ है नाशकारी पारसी थियेटर में भी इसीलिये लोगों की रुचि बढ़ गई है—मण्डली ने अभिनय बहुत उत्तम किया हरिश्चन्द्र शैव्या रोहित नारद विश्वामित्र कलि सबों ने अपना २ भाग बहुत अच्छा दरसाया अभिनय भी इन सबों का सब भांत निर्दोष था—छोटा सा बालक रोहित का अभिनय देख दर्शक बड़े चकित और मुदित हुये—अब मण्डली से यही वक्तव्य है कि आपस में फूट का बीज न बो सब लोग मेल मिलाप से रह नित्य नया नाटक तैयार कर खेलते रहैं तो भाषा और देश दोनो का बहुत कुछ सुधार हो—अन्त में हम इस मण्डली के मंत्री और स्थापक को बहुत २ धन्यवाद देते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि प्रति दिन इसकी उन्नति होती रहे ॥

गीतासार समुच्चय।

पहले के आगे से।

ग्यारहवीं अध्याय में भगवान् ने अर्जुन को अपनेही शरीर में विश्व भर को दिखलाया है ॥

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथसहस्रशः।

नानाविधानि दिव्यानि नाना बर्णाकृतीनिच ॥

अर्जुन मेरे सैकड़ों हज़ारों रूप देखो जो मेरे दिव्य रूप कृष्ण पीत आदि अनेक बर्ण छोटी बड़ी टेढ़ी सूधी आदि जुदी २ बहुतेरी शकल के हैं—अर्जुन को ऐसे बहुत से रूप देख पड़े जिनके अनेक मुख अनेक नेत्रों से देखने वाले को अचरज दिलाने वाले थे—उस समय भगवान् के श्री अंग का ऐसा प्रकाश था जैसा सहस्र सूर्य एक साथ उदय हो जितना प्रकाश दे सक्ते हैं वैसी दीप्ति उनके अंग की थी—अर्जुन को जब इस चर्म दृष्टि से न देख पड़ा तब भगवान् ने उन्हें दिव्य दृष्टि दी तब अर्जुन हाथ जोड़स्तुति करते हुये बोले ॥

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरागांश्च दिव्यान्

हे देव मैं इस समय आप के देह में संपूर्ण देवताओं को पंच भूतात्मक जीवों के समूहों को कमल के आसन पर स्थित ब्रह्मा को शिव को संपूर्ण ऋषियों के मण्डल को बड़े २ बिषधर उलवण सर्पों को देखता हूं—अनेक आप के मुख हैं अनेक बाहु हैं अनेक उदर हैं अनेक नेत्र हैं आप का अनन्त रूप है अर्थात् कहीं से आप का ओर छोर नहीं है—आप के आदि मध्य अन्त तीनों का पता नहीं मिलता हे विश्वेश्वर मैं आप को विश्वरूप देखता हूं—किरीट गदा चक्र सब आप धारण किये हो तेजः पुंज सब ओर से प्रकाशमान् धगधगाती हुई आग और मध्यान्ह के सूर्य की चमक की तो यंत्रों के द्वारा नाप जोख हो भी सक्ती है पर आप की इस अप्रमेयद्युति की नहीं—इससे आप सब ओर से दुर्निरीक्ष्य हो अर्थात् नहीं देखे जा सक्ते हो ॥

अनेकबाहूदरबक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतो नन्तरूपम् ।
नान्तं नमध्यं नपुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूपम्

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम्।

इत्यादि कई श्लोकों में स्तुति के उपरान्त अर्जुन कहने लगे महाराज मैं आप का यह रूप देख बड़ा व्यथित हुआ मेरा धैर्य छुट गया ऐसा घबड़ा गया हूं कि मुझे किसी तरह शान्ति नहीं मिलती ॥

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि
दिशो नजाने नलभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास।

हे देवेश बड़े२ डाढ़ वाले प्रलय काल की अग्नि समान भयानक आप के मुखों को देख मैं ऐसा घबड़ा गया हूं कि मुझे दिशा का ज्ञान न रहा कि मैं किस ओर को खड़ा हूं यदि भाग के जाया भी चाहूं तो किधर को जाऊं सो नहीं जानता-मेरे चित्त को शान्ति नहीं है हे जगन्निवास अब आप प्रसन्न हो-राजाओं के समूह सहित ये सब धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन भीष्म द्रोण कर्ण मै हमारी ओर के बड़े२ योद्धाओं के जो इस समय लड़ने को संग्राम में सन्नद्ध खड़े हैं तुम्हारे भयानक मुख में प्रवेश करने को जल्दी कर रहे हैं-उनमें से कोई तो ऐसे हैं जिनका मस्तक तुम्हारे दांतो से पिस कर चूर २ हो गया है कोई तुम्हारे दांतों के बीच लटके हुये देख पड़ते हैं ॥

जैसा नदियों के जल का प्रवाह समुद्र की ओर बहता हुआ समुद्र में जा प्रवेश करता है वैसेही ये वीरों के गण राजा लोग तुम्हारे जलते हुये मुख में प्रवेश कर रहे हैं-जैसा फतींगे जलती हुई आग में मरने के लिये जा गिरते हैं वैसाही ये भूत गण तुम्हारे मुख में प्रवेश कर रहे हैं-तुम जगत् भर को निगलते हुये खा रहे हो-हे सर्व व्यापक तुम्हारी उग्र प्रभा समूह अपने तेज से जगत् भर में व्याप्त हो सबों को सन्तापित कर रहा है-हे उग्र रूप आप कौन हैं? हे सब देवों में श्रेष्ठ

मैं आप को नमस्कार करता हूं प्रसन्न हो-हे आदि पुरुष मैं आप को जानने की इच्छा रखता हूं ॥

भगवान् कृष्ण चन्द्र अब अर्जुन को इस विश्वरूप दिखलाने का भेद बतलाते हैं कि मैं लोगों के क्षय करने को काल रूप हूं मैं इस समय सबों के नाश करने में प्रवृत्त हूं-तुम चाहो न लड़ो तो भी शत्रु की सेना में जो सब योधा खड़े हैं वे कोई न बचैंगे धीरे२ मैं सबों को निगल जाऊंगा-इन सबों को मैं ने पहले ही से मार रक्खा है तुम केवल निमित्त मात्र इनके मारने में बनते हो ॥

नचैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वाजयेम यदिवा नो जयेयुः

प्रारंभ में अर्जुन ने शंका किया था "ये लोग हम को जीतैं या हम इन को जीतैं इन दोनों में कौन सी बात उत्तम है सो भी हम नहीं जानते" उसी का जवाब यहां पर दिया है कि द्रोण भीष्म से कर्ण आदि वीरों को मैं ने पहले ही से मार रक्खा है भय मत करो तुम निश्चय जीतोगे इस्से अवश्य लड़ो ॥

भगवान् के ये वाक्य सुन डर से कांपते हुये अर्जुन कृष्ण चन्द्र को बार २ प्रणाम कर गदगद स्वर से फिर बोले-हे हृषीकेश आप के संकीर्तन से जो संपूर्ण जगत् प्रसन्न होता है और आप में अनुराग करता है यह उचित ही है-तुम्हारे नाम मात्र के उच्चारण से भय के स्थान राक्षस दूर भाग जाते हैं तब साक्षात् दर्शन का क्या कहना-सिद्धों के समूह आप को नमस्कार करते हैं और क्यों न तुम्हें नव आप सर्व श्रेष्ठ सृष्टि के उत्पादक ब्रह्मा के भी पैदा करने वाले हो अविनाशी हो सत् असत् दोनो के परे हो-तुम पुराण पुरुष आदि देव हो इस संसार के श्रेष्ठ कारण हो तुम से संपूर्ण विश्व व्याप्त है-शेष।

—o—

बड़ों के बड़प्पन में सब फबता है।

इस बार कलकत्ता युनिवरसिटी कनवोकेशन में श्रीमान् लार्ड करज़न महोदय ने हम लोगों को झूठा और इम्मारल कह न जानिये कब का बुखार जमा था कि खूबही बिष उगला-लोगों का ऐसा भी अनुमान है कि दो एक दिन पहले जो बड़े लाट की कौंसिल बैठी थी उसमें आनरेबुल प्रोफेसर गोखले ने अपनी स्पीच में बहुतही लताड़ा और कायल किया था इसी पर चिढ़ श्रीमान् ने ऐसा कहा—हम दुर्बल हैं आप हमारे प्रभु और शासन कर्ता हैं तो आप को सब सोहता है हम अलबत्ता सब ओर से चौकसी रक्खें मुह खोलने का साहस न करैं साहस किया कि बज्रपात होते देर नहीं-हमारे शास्त्रों में "नसत्यात्परोधर्मः„ ऐसे वाक्यों के हज़ार पांच सौ टुकड़े होंगे रामायण और भारत में अध्याय की अध्याय पड़ी है जिनमे सत्य सन्तोष शौच आदि उत्तम गुणों की कितनी महिमा गाई गई है सो हम झूठे और "इम्मारल„ अर्थात् कुत्सित चरित्र के हैं-महाराज दशरथ सत्यही से बंध राम के बन जाने पर प्राण खो बैठे-सच पूछो तो यूरोप के पाश्चात्य देशों में सत्य और चरित्र की पवित्रता का बीज गया कहां से जब भारत और यहां की आर्य जाति समस्त संसार को शिक्षा देने का दावा बांधती है तब यूरोप की पाश्चात्य जाति किस गिनती में रही-हाँ अब इस समय हमारे दिन गिरे हैं हम सब भाँत बिगड़ गये हैं गर्द खोर गुलाम बने हैं तब राह की ठिकरी भी हमें हंसती है तो श्रीमान् ने जो हमे बनाया सो तो उनके बड़प्पन की शोभा है-श्रीमान् ने इस बात को एक बार भी न सोचा कि हम भूखों मर रहे हैं किसी तरह बाल बच्चों को पालते दिन काट रहे हैं उस पर यह ताना कि तुम झूठे हो सत्य का पालन यूरप वाले जानते हैं तुम नहीं-इसी से हम ने कहा कि बड़ों के बड़प्पन में सब फबता है॥

मित्रगोष्ठी ।

विविध विषय भूषित संस्कृत का मासिक पत्र अभी तक केवल संस्कृत चन्द्रिका इस के पढ़ने वाले चकोरों को आनन्द देती थी अब यह मित्रगोष्ठी भी काशी से प्रगट हो सहृदयों को अपने सरस संलाप से प्रति मास मुदित करेगी इसका अभ्युदय अवश्यमेव संस्कृत का सौभाग्य है ईश्वर मित्रों की इस गोष्ठी को चिरस्थायी करे इसका अग्रिम वार्षिक मूल्य १॥) है ॥

——o——

हा हमी हताश क्यों हुये ।

सरस्वती राघवेन्द्र समालोचक से कई एक नये २ मासिक पत्रों का नवाभ्युत्थान पर हमें ईर्षा होती है कि हाय हम ऐसे हताश क्यों जन्मे—ये सब नये सहयोगी अपने अनुपम लेख की अनोखी छटा से पढ़नेवालों को प्रसन्न रख उनका मन अपनी मूठी में कर लेना कैसा अच्छी तरह जानते हैं—हमें इतना शऊर न हुआ कि सौ पचास ग्राहकों को भी लुभा सक्के और उन्हें अपने लेख का रसिक कह सक्के—पुरानी गुदड़ी में चाही लाल क्यों न पिरोया हो पर नयों के रंगीले चटकीले वेषभूषा से मोहित किसे पड़ी है कि गुदड़ी की शोध में लग मूर्ख बनै—अस्तु इस बार की सरस्वती की चटकीली चमक दमक देख कुछ के यही कहते बनता है कि सूर्योदय की जगमगाती ज्योति में दीपक के प्रकाश से कौन लाभ ? निस्सन्देह यह दीपक की बेहयाई है कि अपने को बुझा हुआ न मान हताश हो कर भी टिमटिमा रहा है ॥

——:0:——

प्राप्त पुस्तकों की जाँच

आदर्श दम्पति

दाम्पत्य प्रेम भ्रातृ स्नेह तथा एक सुचरित्रा स्त्री के चरित्र से एक कुचरित्र दुष्ट मनुष्य किस तरह पर सुधर गया यह सब इसमें बहुत अच्छी तरह दिखाया है अत्युक्ति से रसाभास बहुत ठौर न हो गया होता तो उपन्यास यह बहुतही उत्तम कहा जाता यह पुस्तक स्त्री और पुरुष दोनो के पढ़ने लायक है ॥

स्त्री शिक्षा विचार

स्त्रियों के पढ़ाने वा न पढ़ाने से क्या हानि या लाभ है सो इसमें दिखाया गया है जो लोग इस असमंजस में हैं कि स्त्रियों को पढ़ावें या न पढ़ावें वे अवश्य इसे पढ़ें—मिलने का पता वैद्यनाथ गुप्तमंत्री आर्य समाज मिर्ज़ापूर मूल्य =)

———o———

काशी के पण्डित किशोरी लाल जी गोस्वामी पाँच वर्ष से उपन्यास नाम की मासिक पुस्तक निकाल रहे हैं जिसमें सामाजिक ऐतिहासिक आदि कई तरह के उत्तमोत्तम उपन्यास निकल चुके हैं उसी मासिक पुस्तक के चतुर्थ वर्ष पूर्ण होने के आनन्द पर अपने ग्राहकों को खुश करने के लिये छोटे २ दिलचस्प चार उपन्यास उन्हों ने दिये हैं जो सब मिला कर १११ पेज हो जाते हैं—उपहार की पहिली पुस्तक चन्द्रावली व कुलटा कुतूहल है—यह एक सामाजिक उपन्यास है किसी एक कुलटा के प्रेम में फंस कर मनुष्य की जो दुर्गति हो जाती है वही इसमें दिखाया गया है उपन्यास रोचक है दाम =)

चन्द्रिका व जड़ाऊ चम्पाकली

यह एक छोटासा जासूसी उपन्यास है—जिसमें एक झूठे खून का पता लगाया है दाम =)

हिन्दी प्रदीप

मासिक पत्र

विद्या, नाटक, इतिहास, साहित्य, दर्शन, राजसम्बन्धी इत्यादि
के विषय में हर महीने की पहिली को छपता है ॥

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट ह्वै आनन्द भरै ।
बचि दुसह दुरजन बायुसों मणिदीप सम थिर नहि टरै ॥
सूझै बिबेक बिचार उन्नति कुमति सब यामें जरै ।
हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै ॥

जि० २७ } प्रयाग { मार्च । एप्रिल ।
सं० ३-४ } { सन् १९०५ ई०

पं० बालकृष्ण भट्ट सम्पादक और प्रकाशक की आज्ञानुसार
पं० रघुनाथ सहाय पाठक के प्रबन्ध से
यूनियन प्रेस इलाहाबाद में मुद्रित हुआ

सभायें पुस्तकालय और विद्यार्थियों तथा असमर्थों से अग्रिम १॥=)
समर्थों से मूल्य अग्रिम ३।=) ——०*०—— पीछे देने से ४।=)

पिछले अङ्कों की पूरी जिल्द फी जिल्द मै पोस्टेज ३)

——:००:——

जि० २७
सं० ३-४

प्रयाग

मार्च, एप्रिल,
सन् १९०५ ई०

मनुष्य के जीवन की सार्थकता ।

हमारे जीवन की सार्थकता क्या है और कैसे होती है इस पर, जुदे २ लोगों के जुदे २ विचार और उद्देश्य हैं अधिकतर इसका उद्देश्य समाज पर निर्भर है अर्थात् हम जिस समाज में जैसे लोगों के बीच रहते हैं उनके साथ जैसा बर्ताव रखते हैं उसी के अनुसार हमारे जीवन की सार्थकता समझी जाती है-यद्यपि कवियों ने मनुष्य जन्म की सार्थकता को अपनी २ उक्ति के अनुसार कुछ और ही ढंग की ढुलका लाये हैं जैसा भारवि ने कहा है :—

स पुमानर्थवज्जन्मा यस्य नाम्नि पुरस्थिते।
नान्याङ्गुलि समभ्येति संख्यायां मुद्यताङ्गुलिः॥

पुमान् पुरुष वह है जिसमें पुरुषार्थ का अङ्कुर हो; सार्थक जन्म वही पुरुष है कि जिसके पौरुषेय गुणों की गणना में जो अंगुली उसके नाम पर उठै वही फिर दूसरे के नाम पर नहीं—अर्थात् जो किसी प्रकार के गुण में एकता प्राप्त किये है संसार में उसके बराबरी का दूसरा मनुष्य न हो—इस तरह की बहुतेरी कवियों की कल्पनायें पाई जाती हैं किन्तु यहां इन कल्पनाओं से हमारा प्रयोजन नहीं है जिसे हम जीवन की सार्थकता कहेंगे वह बातही निराली है—समाज के बर्ताव के अनुसार सफल जीवन इसे अलबत्ता कहेंगे जैसा—

यस्य दानजितं मित्रं शत्रवो युधि निर्जिताः।
अन्नपानजिता दारा सफलं तस्य जीवितम्॥

जिसने समय २ धन दे मित्रों को अपने काबू में कर लिया; जिसने शत्रुओं को संग्राम में जीता; भांत २ के गहने और कपड़ों से जिसने अपनी स्त्री का सन्तोष किया उसी का जीवन सफल है—बस सकल जीवन की इयत्ता या ओर छोर है तात्पर्य यह कि जिसने स्वार्थ साधन को भरपूर समझा वही यहां सफल जन्मा है—विलाइत में जब तक अपने देश या जाति के लिये कोई ऐसी बात न कर गुज़रा जिसमें सर्व साधारण का कुछ उपकार है तब तक जीवन की सफलता नहीं कही जा सक्ती क्योंकि इतना तो जानवर भी कर लेते हैं—अपने बच्चों को पालना पोषना वे भी भरपूर जानते हैं; जो उनके शत्रु हैं उनसे लड़ना; जो उनके साथ भलाई करते हैं उन्हें उपकार पहुंचाने का ज्ञान उन्हें भी रहता है बरन कुत्ते और घोड़े आदि कई एक पशुओं में कृतज्ञता और स्वामि भक्ति मनुष्यों से भी अधिक पाई जाती है तब

मनुष्य और जानवर में क्या अन्तर रहा——इससे निश्चय होता है कि जन्म की सफलता का ज्ञान केवल समाज पर निर्भर है जिस काम को या जिस बात को समाज के लोग पसन्द करते हों और भला समझते हों उस ओर हमारी प्रवृत्ति का होना ही जीवन की सफलता है—जैसा हम गुलामी की हालत में पढ़ लिख सौ पचास की नौकरी पाय अपनी ज़िन्दगी दूसरे के आधीन कर देनाही जन्म की सफलता है सच है "सेवाविक्रीतकायानां स्वेच्छाविहरणं कुतः" जिन्होंने दूसरे की सेवा में अपने को दूसरे के हाथ बेच डाला है उनको फिर आज़ादगी कहां ? सैकड़ों बर्ष से गुलामी में रहते पुश्तहा पुश्त बीत गये स्वच्छन्दता या आज़ादगी की कदर हमारे मन से उठी गई—इस हीरे की परख के जौहरी इंगलैंड तथा यूरोप और अमेरिका के देशों में पैदा होने लगे—या अब इस समय जापान को इसकी कदर का ज्ञान होने लगा है हमारे यहां तो न जानिये वह कौन सा ज़माना था जब मनु महाराज लिख गये कि "सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्" सब कुछ जो अपने बश का है सुख है जो दूसरे के आधीन है वही दुःख है सुख दुःख का सर्वोत्तम लक्षण यही निश्चय किया गया है—सो अब इस समय दस बीस की नौकरी भी ऐसी सोने की खेती हो रही है कि हमारे नव युवक इसके लिये तरस रहे हैं बड़े से बड़ा इमतिहान पास कर अर्ज़ी हाथ में लिये बंगले२ मारे फिरते हैं और दुरदुराये जाते हैं—उसमें भी बर्तमान समय के कर्मचारियों की कुछ ऐसी पालिसी हो रही है कि सौ रुपये से ज़ियादह की नौकरी नेटिवों को न दी जाय—सेवा विक्रीत काया इस नौकरी में भी वह समय अब दूर गया जब दो एक जुमले अंगरेज़ी के लिखने और बोल लेने ही मात्र से सैकड़ों रुपये महीने की नौकरी सुलभ थी—सच है।

गतः स कालो यत्रास्ते मुक्तानां जन्म शुक्तिषु।
उदुम्बरफलेनापि स्पृहयामोऽधुना वयम्॥

आज़ादगी के अनन्य भक्त कोई २ नव युवक स्वच्छन्द जीवन Independant life की धुन बांधे हुये कोई आज़ाद पेशा किया चाहते हैं तो पास पूंजी नहीं कि हौंसिले के माफिक कुछ कर दिखावें—कंपनी अथवा पणबन्धगोष्ठी की चाल अपने यहाँ न ठहरी किं उन्हें कहीं से सहारा मिलता—हमारा ऐसा सर्वस्व हरण होता जाता है कि न तो धन रहा न कोई जीविका बच रही कि ये लोग अपना हौसिला पूरा करते—जिनके पास रुपया है वे रुपयों के सूद के घाटे का परता पहले फैला लेंगे तो टेंटा ढीला करैंगे—यों चाहो रुपया रक्खा रह जाय एक पैसा ब्याज न आवे पर रुपया कहीं लगाने के समय ब्याज का परता जरूर फैला लेंगे—जिन वेचारों ने हिम्मत बांध कुछ रुपया कहने सुनने से लगाया भी तो पीछे उन्होंने ऐसा घच्चा खाया कि घिस हो गये—उन्हे कोई ऐसा दियानतदार आदमी न मिला कि उनका उत्साह बढ़ता और मिल कर हम कोई काम करना नहीं जानते यह कलंक हम से दूर हटता—मा होती तो मौसी को कौन झीखता हम मिलना जानते होते तो बर्तमान दुःस्वभाव की दशा को क्यों पहुंचते अस्तु—इस जीवन के सफलता के अनेक और दूसरे २ उदाहरण हैं—संसार को मिथ्या मानने वाले अहंब्रह्मास्मि की धुन बांधे हुये स्वभाव वादी जीवन की सफलता इसी में मानते हैं कि हमें यह बोध हो जाय कि हमी ब्रह्म हैं और इस जगत् के सब काम आप से आप होते जाते हैं कोई इसका प्रेरक नहीं है—पाप और पुण्य भला और बुरा दोनो एक से हैं—चित्त में ऐसा पूरा २ भास हो जाय तो बस हम जीवन मुक्त हो गये अब हमें कुछ करना धरना न रहा सब ओर से अकर्मण्य हो बैठे—और आगे बढ़ो तो मन को नाश कर डालो क्योंकि सब उत्साह और आगे को तरक्की करने का मूल कारण मन सो न रहेगा तो बुराई का काम चाहे न भी रुकै पर भलाई तो तुम से कभी होही गी नहीं और यह सब भी तभी तक जब तक अपनी ज़रा भी किसी तरह की हानि

कहीं है बस पेवल ज़बानी जमा खर्च मात्र रहे आत्मत्याग के बदले सो कहीं छू भी न जांय कसौटी के समय चट्ट फिसल कर चारो खाने चित्त गिर पड़ा करो—ऐसाही सेवक भक्त अपने प्रभु की सेवा में लीन होनाही जीवन की सफलता मानता है-स्मरण, कीर्तन, वन्दन, पाद सेवन, सख्य, आत्मनिवेदन आदि नवधा भक्ति के द्वारा जो अपने सेव्य प्रभु में लीन हो गया वास्तव में उसका जीवन सफल है-इस उत्तम कोटि के महात्मा अब इस समय बहुत कम जन्मते हैं अहं ब्रह्मास्मि कहने वाले धूर्त वंचकों से तो यही भले-यद्यपि जिस बात की पुकार हमे है सो तो इस दासोस्मि में भी नहीं पाई जाती फिर भी प्रेम और यह दृश्य जगत् सर्वथा निस्सार नहीं है न सर्व नाशकारी अकर्मण्यता ही का दखल इनमे है इससे ये बहुत अंशों में सर्वथा सराहनीय हैं-चतुर सयाने चलते पुर्ज़े चालाक कहीं पर हों अपनी चालाकी से न चूकने ही को जन्म का साफल्य मानते हैं-किसी कवि ने ऐसों ही का चित्र नीचे के श्लोक में बहुत अच्छा उतारा है—

आदौ भागाः पंच धार्ष्टस्य देयाः द्वौ विद्यायाः द्वौ मृषाभाषणस्य । एकं भागं भण्डिमायाः प्रदेयं पृथ्वी वश्यामेषयोगः करोति ॥

पहला ५ हिस्सा धृष्टता का हो तब दो विद्या का दो झूठ बोलने का और एक हिस्सा भड़ौआ का भी होनाही चाहिये जिन मे ये सब मिला के दस हिस्से हुनर के हैं वे इन सबों के योग से पृथ्वी भर को अपने काबू में ला सक्ते हैं-संसार में इन्ही का नाम चलता पुर्ज़ा है हम ऐसे गोबर गनेस बोदे लोगों का किया क्या हो सक्ता है जो निरे अपटु दस पांच आदमियों को भी अपनी मूठी में नहीं ला सक्ते-इसी से हम पहले अंक में लिख आये हैं कि हा हम ऐसे हताश क्यों जन्मे ? प्रयोजन-यह कि जिसने झूठ सच बोल दूसरों को धोखा दे रुपया

कमाना अच्छी तरह सीखा है वही सफल जन्मा है-सभ्य समाज के मुखिया हमारे बाबू लोगों में सफल जीवन का सूत्र साहब बनना है जब तक कहीं पर किसी अंश में भी हम हिन्दुस्तानी हैं इसकी याद बनी रहेगी तब तक उनके सफल जीवन की त्रुटि दूर होने वाली नहीं-इससे वे सब २ स्वांग लाते हैं क्या करैं लाचार हैं अपना चमड़ा गोरा नहीं कर सक्के-अस्तु ये कई एक नमूने सफल जीवन के दिखलाये इन सबों में सफल जीवन किसी का भी नहीं है वरन सफल जीवन उसी पुरुष श्रेष्ठ का कहा जायगा जिसने अपने देश तथा अपने देश बान्धव के लिये कुछ कर दिखाया है जो आत्म सुख रत न हो खुदगरज़ी से दूर हटा है-इस तरह के उदार भाव का उन्मूलन हुये यहां बहुत दिन हुये नई शिक्षा प्रणाली नये सिरे से हम लोगों में पुनः उसका बीजारोपण सामयिक शासकों के नमूने पर किया चाहती है-कदाचित् कभी को यह बीज उगै फलकै और उसमें देशानुराग का अमृत फल फलै और कोई ऐसे सुकृती भाग्यवान् पुरुष देश में पैदा हों जो सुधास्यन्दी उसके पीयूष रस का स्वाद चखने का सौभाग्य प्राप्त करैं पर हम तो अपने हतक जीवन में उसके स्वादु से वंचितही रहेंगे ॥

——:०:——

बुद्धिमानों के अनुभव ।

(१)

हमारा मन ही भले या बुरे कामों का कारण है; मन ही मनुष्य को सुखी या दुखी करता है; मन का उदार भाव ही निर्द्धन अथवा धनी होने की प्रतीत दिलाता है; कुछ लोग ऐसे होते हैं कि उन्हे इच्छा मात्र से सब कुछ मिल सक्ता है तो भी वे समझते हैं कि हमें और चाहिये, और संपत्ति के भण्डार में रह कर भी इच्छा करताही रहता है-इसी के बिरुद्ध कुछ लोग ऐसे भी होते हैं कि उनके पास थोड़ा है तथापि अधिक के लिये याचना नहीं करते उसी थोड़े में अपने

को संपत्ति मानते हैं-जिसे बढ़ती कहते हैं वह सम्पत्ति नहीं है तस्मात् घोड़े के लिये आशिष प्रार्थना या बरक़त मांगना भूल है-स्पेन्सर

(२)

स्वादिष्ट भोजन का आनन्द जीभ के लिये है भोजन के बहुमूल्य अथवा स्वादु पर नहीं निर्भर है-होरेस

(३)

अच्छा या बुरा वास्तव में कुछ नहीं है जिसे हम भला या बुरा कहते हैं वह उस बस्तु के बारे में हमारा सत् या असत् विचार या कल्पना उसे भली या बुरी बस्तु करती है-शेक्सपियर

(४)

यदि किसी बाहरी कारण से तुम्हें क्लेश पहुंचता हो तो इस बात पर ध्यान दो कि वह बस्तु स्वयं तुम्हें दुःख नहीं दे रही है बरन वह उस बस्तु की ओर तुम्हारी वैसी कल्पना है जो तुम्हें भयभीत करती है यदि तुम चाहो तो उस कल्पना को अपने मन से अलग कर सक्ते हो-

मार्कस आरलियस

(५)

आत्मा द्रष्टा है नेत्रों के द्वारा पदार्थों का ज्ञान होता है परन्तु ठीक २ परख उस वस्तु की मन को होती है-आनन्द घृणा शान्ति चांचल्य सब यहीं से पैदा होते हैं-मन जब प्रसन्न है तब हम जो दृश्य देखते हैं वह हमें नन्दन बन सा प्रतीत होता है-पुनः जब वही मन दुखित रहता है तब जिस ओर नज़र जाती है वहां ही कज्जल का ढेर सा बिखरा हुआ दीख पड़ता है-यदि हम कोई विशेष चिन्ता में निमग्न हों तो हमारे नेत्र के सामने उपस्थित पदार्थ भी मानो नहीं हैं हमारी दृष्टि के साथ ही साथ हमारे मनो विकार भी उपस्थित होते हैं और वे दृश्य पदार्थ उन्हीं मनो विकार के अनुसार मालूम होते हैं-क्राब

(६)

देश अथवा काल के प्रभाव से अपने मन का दृढ़ निश्चय बदलना ठीक नहीं मन की स्थिरता ही उसका स्थान है मन अपने भीतरही स्वर्ग को नरक और नरक को स्वर्ग बना सक्ता है-मिलटन

(७)

प्रसिद्ध से प्रसिद्ध शूर वीर की वीर श्री में मालिन्य छा जाता है, अपार शास्त्रीय ज्ञान भी वायु समान तरल है, भीमसेन से महाबली का बल तुच्छ है, यदि ये तीनों बातें मन के शासन से रहित हों-
टामस स्काट

(८)

सादी और सरल जीवन वृत्ति और सभ्यता के आचरण मन को शान्ति देने वाले हैं-

(९)

जब मनुष्य के चित्त में किसी तरह की कामना उठती ही नहीं और स्वयं आनन्दमय हो जाता है जिसके चित्त को कड़ी से कड़ी बिपत्ति में भी खेद नहीं पहुंचता न सुख या अपने अभ्युदय में अपने को परम सुखी मानता है जिसके पास से भय प्रीति और क्रोध दूर हट गये हैं वह मनुष्य स्थित धी कहा जाता है-श्रीमद्भगवद्गीता-

(९)

मनुष्य की जीवन यात्रा में जो आघात उसपर पड़ते हैं जो ऊंच नीच दशा उसे झेलनी पड़ती है उसमें यदि मनुष्य का मन ऐसा रहे कि वह उन आघातों को और ऊंच नीच दशाओं के कारण दुःख मनो विकार आदि से पीड़ित न हो शान्त और स्थिर चित्त बना रहे तो यह सब से बड़ा सुख है-गौतम

(१०)

जिस मनुष्य में मन के शान्ति सुख का अभाव है वह किसी अवस्था में रहे दुखं पाता रहेगा—जिसका मन चंचल है वह अपनी

रहन सहन में परिवर्तन की सदा इच्छा किया करता है परन्तु कहीं और किसी में सुख नहीं पाता—यदि हम सच्चे सुख की कदर जानते हैं तो हमे उसके लिये दूर जाने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह सन्तोष महारत्न हमारे अन्तःकरण के भीतर ही है वे मूर्ख हैं जो सुख की खोज में भटकते फिरते हैं—काटन

(११)

ऐहिक पदार्थों में वह कौन सा पदार्थ है जिसका अधिकार या स्वत्व हमें मिलना ही चाहिये ? उत्तर——आत्म संयम

(१२)

वह मस्तक जिसकी बनावट दुरुस्त है संपद् या बिपद् जिस प्रकार की तकिया उसके नीचे रक्खी जायगी उसी पर वह सुख की नींद सोवैगा ॥

(१३)

मन की शान्त अवस्था सद्‌गुणों के मधुर परिणामों से सदा उज्वल और प्रकाशमान रहती है—बौटी

(१४)

जल से शरीर पवित्र होता है ; मन सत्य से ; आत्मा धर्म और भक्ति से ; बुद्धि ज्ञान से पवित्र होती है—मनु

(१५)

मनुष्य का वह मन जो औदार्य के पन्था का पथिक है ; जो ईश्वर की ओर स्थिर भाव से प्रवण है, सत्य की धुरी पर घूम रहा है, उसे भूमण्डल ही स्वर्ग लोक है—बेकन (बिकण)

(१६)

आरोग्यता का जो संबन्ध शरीर से है वही संबन्ध ज्ञान का मन से हैं ॥

(१७)

क्रोध, असूया अर्थात् डाह, दुष्ट भाव, बदला लेने की इच्छा, बुद्धि

को भ्रष्ट करती है-टिलोटसन

(१८)

मन पखेरू इन्द्रियों के सुखों में तब तक उड़ता फिरता है जब तक ईश्वरीय आध्यात्मिक ज्ञान बाज़ सदृश उसपर आ नहीं टूटता और उसे अपने पंजे में नहीं दबा लेता-कबीर

(१९)

जीवात्मा का परमात्मा के साथ ऐक्य होनाही शान्ति है-टाइन

(२०)

हमारा चंचल मन सदा विश्राम पाने की खोज में घूमा करता है और आत्मा की प्रसन्नता ध्यानस्थ होने में है परन्तु मन को फिर भी क्रिया की आवश्यकता है ॥

(२१)

जो उन्नति हमारे इस मनुष्य के शरीर से संभव है उसके लिये मन और शरीर दोनो को काम करने की आवश्यकता है-जानसन [अनुवादक]

(२२)

छोटे लोगों का मन खाली नहीं रहता जो तुम उसमें किसी भली बात का प्रवेश न कर सको तो वह बुराई ही का उपयोग करेगा-बर्क

(२३)

अपने फुरसत के समय को आलस्य में न गंवाओ उसे इस प्रकार लगाओ जिस में कुछ न कुछ मीठा फल फले इस लिये कि जो मन किसी काम में लगा है वह ऊसर पृथ्वी सा निष्फल नहीं रहता वह जो अच्छे फल न फलै तो घास फूस आप से आप उग आते हैं— Vice quickly spring unless we goodness sow—Rankest weeds in rechest gardengrow. हक्सर

(२४)

सब प्रकार की दरिद्रता में मन की दरिद्रता का अधिक सोच होता है ॥

(२५)

जैसा शरीर को नीरोग रखने को नित्य कसरत की आवश्यकता है उसी तरह यदि मन को नीरोग रक्खा चाहो तो सदा ऊंचे खयालों की ओर उसे रुजू करो—हम उस मनुष्य को नीरोग न कहेंगे जो अपनी भुजाओं को खूब पुष्ट और बलवान् किये है परन्तु पैर उसका लकवा का मारा हुआ है—न तुम उसी को चंगा या तन्दुरुस्त कहोगे कि जिसके पैर चलने के लिये मज़बूत हैं परन्तु हाथों का उपयोग नहीं कर सकता—या नेत्रों से देख सक्ता है पर कान का बहिरा है—साथही इसके यह भी है कि तुम अपने किसी एक अंग को इस तरह अपूर्णता से बढ़ने के लिये अवकाश न दोगे न अपने मन को गिरी दशा में पड़ा रहने दोगे बरन शरीर के अवयवों की तरह उसका भी विविध मानसिक शक्तियों में यथोचित उपयोग करोगे—जान रसकिन

(२६)

संभाषण मन का चित्र है, लेखिनी मन की जिह्वा है, यदि मन अन्धा है तो आंखों की कोई उपयोगिता नहीं—अरबी कहावत

(२७)

हलका मन कोई तुच्छ वस्तु पा कर भी प्रसन्न हो जाता है—आविद

(२८)

जिसको मन बहलाने या प्रसन्न रखने के अनेक साधन हैं वह कारूं के ख़ज़ाने की भी परवाह नहीं करता—हाल

(२९)

यह अनुभव सिद्ध है कि जिस देश में जो लोग मानसिक काम करते हैं वे शारीरिक काम करने वालों पर अपना अधिकार चलाते हैं

(३०)

चरित्र पालन और विद्या ये दो हमारी योग्यता के केन्द्र हैं दो मे

से एक के न होने से मनुष्य जीवन के सपूर्ण सुख नहीं मिल सके केवल विद्या किसी काम की नहीं जो सद्वृत्त न हुआ ॥

(३१)

जिन के मन में सदा शङ्का और सुबहा लगा रहता है उनको शङ्का करने का एक न एक कारण मिली जाता है—सिसिरो

(३२)

ईश्वर की सृष्टि में मनुष्य सब से श्रेष्ठ क्यों है ? इसलिये कि उसे बिचार शक्ति दी गई है—अनवार सहेली

(३३)

मस्तिष्क के अति गुप्त स्थान में कोई एक श्रेष्ठ न्यायाधीश रहता है जिसका अधिकार सर्वव्यापी है और जिसे मनुष्य मात्र एक स्वर से विवेक इस नाम से पुकारते हैं-चर्च हिल

गणपति जानकी राम दुबे, बी ए

—:o:—

लोक निन्दा।

संसार समर भूमि में हमारे जीवन के साथ अनेक भय लगे हैं जैसा

भोगेरोगभयं, कुलेच्युतिभयं, वित्तेनृपालाद्भयं, मौनेदैन्यभयं, बलेरिपुभयं, कायेकृतान्ताद्भयं, शास्त्रेवादभयं, गुणेखलभयं, रूपेजरायाभयम् ॥

इत्यादि इतने प्रकार के भय के रहते भी लोक निन्दा का एक ऐसा प्रबल भय है जो क्षण भर में मनुष्य को और का और कर देता है—भारत के प्रारंभ में गाण्डीव धनुर्धारी बीर धुरीण अर्जुन जब दोनो ओर के बीर युद्ध के लिये सन्नद्ध खड़े थे और आप स्वयं विजय की प्रतिज्ञा कर चुके थे युद्ध छिड़नेही को था ऐसे नाज़ुक समय में धनुष

के रख "अब मैं न लड़ूंगा" यह कह हाथ पर हाथ रख सिर झुका बैठ गये और अपने यावत् पौरुषेय गुण बल, पराक्रम, श्री, धर्म, धैर्य, पाण्डित्य सब पर पानी फेर चुके थे—यदि पूछा जाय क्यों और किस भय से उनकी यह दशा हुई तो यही कहा जायगा कि इसी लोकनिन्दा पिशाची की भय से क्योंकि और किसी प्रकार के भय को तो वह कुछ मालही नहीं समझते थे—उनके कहने का आशय यह था—"जिन पूज्य गुरुवरों के पावन पद रज से मेरे जन्म जन्मान्तर का पाप दूर हो जाता है, जिन सखा सम्बन्धियों के सुभग शरीर स्पर्श करने से मेरा आत्मा तथा मन पवित्र होता था; उन्ही की हत्या से आज मुझे क्या लाभ होगा—हा मेरी अविवेकिता! मैं घोर शत्रु के समान उन्ही कुलपूज्य महात्माओं के ऊपर आज निष्करुण हो बाण बर्षा करने को उद्यत हूं-हाय! मुझ सा कौन ऐसा दूसरा नराधम होगा जो इसका परिणाम क्या होगा इसके बिचार की ओर से सर्वथा अन्धा है—मैं अपने स्वजन बान्धवों को मार कर राज्य सुख भोगने की इच्छा करता हूं-जो नरक यातना से भी अधिक भयंकर है—मेरे इस अनुचित व्यवहार को देख लोग मुझे क्या कहेंगे-अस्तु यह प्रगट है कि लोक निन्दा के भय से अर्जुन के इतना विषाद करने पर भी महाभारत का युद्ध बन्द न रहा अवश्य हुआ और अर्जुनही की बीरता से पाण्डवों की जीत हुई तो जानना चाहिये कि वह कौन सी बात थी वा किसका भय पहले के भय से भी अधिक अर्जुन के चित्त में व्यापा जिस्से उन की बीरता और रणोत्साह पुनः जाग उठा उदासीनता कादरता और बिषाद सब जाता रहा—यहां यह बिचारना उचित जान पड़ता है कि उनको समझा कर राह पर लानेवाला कौन था और कैसा प्रभाव शाली, कार्य कुशल, अध्यवसायी, राज नीतिज्ञ, तत्ववेत्ता, समर्थ और बाग्मी था—सब कहेंगे कि वह एक असाधारण पुरुष था और उसकी बातों में वह शक्ति थी जैसी चुम्बक में लोहे के खींचने की रहती है—यदि यह गुण उसमें न रहता तो

अर्जुन सरीखे प्रवीण पुरुष के विचारों का पलट जाना सर्वथा असंभव था और जब तक उनका यह भ्रम दूर न होता महाभारत का युद्ध संभव न था-अच्छा तो वह कौन सी बात थी इसका उत्तर स्पष्ट है-यह वही भय है जिसे लोकापवाद कहते हैं और वह प्रवीण पुरुष जिसने अर्जुन को फिर कायर से सूरमा कर दिया इसी का भय दिखलाया था-देखिये वह नीति निपुण समझाने वाला क्या कहता है-

अर्जुन जिसे तुम लोकनिन्दा कहते हो और जिसके डर से तुम युद्ध नहीं किया चाहते वह यथार्थ में लोकनिन्दा नहीं है तुम भूलते हो लोकनिन्दा तब होगी जब आप ऐसे प्रख्यात नामा बीर क्षत्री हो निज धर्म संग्राम न करोगे और मुह छिपा नाम डुबोओगे-

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति चाव्ययाम् ।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥

यदि तुम न लड़ो गे तो लोक में तुम्हारी महा अपकीर्ति होगी संभावित पुरुष के लिये अपकीर्ति मृत्यु से भी अधिक पीड़ा देती है-जिसके सुनते ही अर्जुन की भुजा फिर युद्ध के लिये फड़क उठी तो स्पष्ट है कि लोकापवाद मनुष्य को क्षण भर में और का और कर देता है ॥

ऊपर के अर्जुन के इस दृष्टान्त से प्रगट है कि लोकनिन्दा दो प्रकार की है इसकी उत्पत्ति अलग २ दो स्थान से होती है जिसमें एक की उत्पत्ति का स्थल अविवेक या मोह है दूसरे का विचार या चित्त की स्थिरता है-अविवेक वा मोह के कारण जो लोकापवाद होता है वह बहुधा व्यर्थ औ बेबुनियाद सा होता है पर दूसरे प्रकार का अपवाद यथार्थ लोक निन्दा है-पहले अपवाद को व्यर्थ इस लिये कहेंगे कि वह अविवेक या मोह जनित अपवाद है और बहुधा अमूलक

होता है उसमें सचाई कम पाई जाती है बहुधा तो यह अपवाद ईर्ष्या के कारण लोगों पर किसी समाज या किसी पुरुष विशेष से उठता है— जब हम देखते हैं कि अमुक पुरुष से हमारा कोई स्वार्थ न सधा तब हम उसकी निन्दा ही को बड़ा काम समझ लेते हैं और इस बात का खयाल मन से ढीला कर देते हैं कि यह हमारी निन्दा करना उचित होगा या अनुचित और अन्त में उस बेचारे को क्या फल मिलेगा जिसकी हम निन्दा करते हैं—यथार्थ में लोकापवाद का दुःख उसी को मालूम होता है जिसका अपवाद किया जाता है दूसरा कोई क्या जाने तस्मात् यह अनुचित निन्दा बड़ी हानि कारक और सर्वथा हेय है—इससे यह कोई न समझ ले कि लोकापवाद का नामही उठ जाना चाहिये वास्तव में समाज को उच्छृंखल होने से यह लोकापवाद ही बचाये रहता है—सच पूछो तो यह लोक निन्दा ही शूर को कायर होने से रोकती है; पापी चार्वाक को पुण्य पुंज आस्तिक बनाती है; अधीर चिन्ता ग्रस्त को धीरजवन्त का पद देती है; आलसी निठल्लू को परिश्रमी और पुरुषार्थी कर देती है कहां तक कहैं यही लोकापवाद मनुष्य को कुमार्ग से सुमार्ग में लाता है—चरित्र को पवित्र रखने के लिये तो यह पानी में फिटकिरी की भांत मलहारक है जिसमें ऐसे २ गुण हों वह क्या छोड़ने लायक है कदापि नहीं समझदार लोग लोकापवाद को बुरा नहीं समझते बरन यह कि लोकापवाद का उत्थान कहां से हुआ है इस पर विशेष ज़ोर देते हैं यदि लोकापवाद किसी पामर मनुष्य कृत या किसी पामर मण्डली से उठाया गया तो उसकी उपेक्षा कर देते हैं जैसा भर्तृ हरि ने कहा भी है—

निन्दन्तु नीति निपुणा यदिवा स्तुवन्तु लक्ष्मीःसमाविशतु गच्छतुवा यथेष्टम्। अद्यैव मे मरणमस्तु युगान्तरेवा न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

किसी स्वार्थ परायण का ऐसा भी कथन है-

सर्वथास्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनोबहुजल्पः
विद्यते नखलुकोपि उपायः सर्वलोक परितोष करो यः ॥

सब तरह पर जिसमें अपना बनै सो करै दूसरों को बदनाम करना तो लोगों का स्वभाव होता है-ऐसा तो कोई उपाय ही संसार में नहीं है जिससे सब लोग राज़ी रहैं ॥

जो कुछ ऊपर कहा गया उससे निश्चय हुआ कि लोकापवाद हेय नहीं है और यथार्थ लोकापवाद वही है जो मूर्ख मण्डली से नहीं बरन विद्वन्मण्डली से प्रचलित भया हो-इससे यह मान लेना कि विद्वन्मण्डली निन्दक है बड़ी भूल है-तो यहां पर यह बतलाना कि विद्वान् तथा सभ्य समाज के लोग कैसे होते हैं उचित हुआ पर लेख पल्लवित होने से अरोचक हो जायगा इससे इस विषय को हम दूसरे अंक के लिये रख छोड़ते हैं-शेष-अनन्त राम पाण्डे-

---

पुराने कवि या ग्रन्थकार ।

पतञ्जलि ।

ये प्राचीन वैयाकरण महा भाष्य के रचयिता हैं। हिन्दुस्तान के पूर्व भाग में गोनर्द नाम प्रदेश पतञ्जलि का निवास स्थान है। उनकी माता का नाम गोणिका था। महा भाष्य के वाक्यों को उठा २ के भाण्डार कर और गोल्डस्टुकरने उनका समय निर्णय करने का प्रयत्न किया है और सिद्ध किया है कि पतञ्जलि यूनानी मिनेन्डर और पाटलिपुत्र के राजा पुष्पमित्र के समकालीन हैं। उन महाशयों के कथनानुसार पतञ्जलि का समय सन् ईस्वी के १४० वर्ष पूर्व से १२० वर्ष पूर्व तक निश्चित होता है। पतञ्जलि ने जो "मौर्यैर्हिरण्यार्थिभिरर्चाः

प्रकल्पिताः" अर्थात् मौर्य्य वंशी राजाओं ने सुवर्ण की कामना से पूजा का व्यवहार चलाया ऐसा वाक्य लिखा है उससे गोल्डस्टुकर साहिब समझते हैं कि वे मौर्य वंशी प्रथम राजा चन्द्र गुप्त से पहिले न रहे होंगे अर्थात् सन् ईस्वी से ३१५ वर्ष पूर्व समय की अपेक्षा प्राचीन नहीं होवेंगे। प्रत्युत संभव है कि उस वंश के अन्तिम राजा के भी पीछे अर्थात् सन् ईस्वी से १८० वर्ष पूर्व में रहे ऐसा जान पड़ता है। क्या इस अनुमान को असंभव कहने का साहस किया जा सकता है ?

पतञ्जलि के और २ वाक्य 'अरुणाद्यवनः साकेतम्' अर्थात् यवन राजा ने अयोध्या पुरी का घेरा और 'अरुणद्यवनो माध्यमिकान्' अर्थात् यवन राजा ने माध्यमिकों को घेरा है। इससे अनुमान होता है कि यूनान वालों ने पतञ्जलि ही के समय में अयोध्या को घेरा होगा। माध्यमिक नागार्जुन के शिष्यों का एक सम्प्रदाय है जो कि शून्य वादी बौद्धों के नाम से विशेष प्रसिद्ध है। अब विचारना चाहिये कि यूनान वालों ने अयोध्या पर कब चढ़ाई की है तो प्राचीन यूनान के इतिहास से विदित होता है कि स्ट्राबो के वर्णनानुसार राजा मिनेन्डर ने यमुना नदी तक के देशों का विजय किया और मथुरा में इसके नाम के सिक्के भी पाये गये हैं। मिनेन्डर का राज्य काल प्रोफेसर लासेन के मतानुसार सन् ईस्वी से १४४ वर्ष पूर्व है। निदान इन सब बातों से निःसन्देह यह बात प्रतीत होती है कि पतञ्जलि सन् ईस्वी की पिछली दूसरी शताब्दी में वर्तमान थे॥

पतञ्जलि वैयाकरण होने के अतिरिक्त एक अति प्रसिद्ध दार्शनिक भी थे और इनका रचित पातञ्जल योग सूत्र भी प्रसिद्ध है। इनके ग्रन्थ की टीका स्वयं व्यास जी ने की है। लोगों को सन्देह भी हुआ करता है कि व्यास का जीवन कितना अधिक रहा होगा कि पतञ्जलि के पीछे तक वर्तमान रहे हों पर ऋषियों का चिरायु होना कोई असम्भव बात नहीं है॥

पद्मगुप्त ।

इनका उल्लेख ऊपर धनञ्जय और धनिक के वर्णन में आचुका है । ये महाशय राजा मुञ्ज के सभासदों में से हैं । दश रूपकावलोक में इनका और रुद्र कवि का भी नाम देखने में आता है । इनके रचित ग्रन्थ का नाम नव साहसाङ्क चरित है । मुञ्ज के पीछे राजा सिन्धुराज ने संभवतः सन् ९९५ ई० से १०१० ई० तक राज्य किया और उन्हीं के प्रतिष्ठा तथा कीर्त्ति के लिये सन् १०१० ई० में नव साहसाङ्क चरित बनाया गया । इस कवि का नामान्तर परिमल भी था ॥

पाणिनि ।

संस्कृत भाषा जानने वालों में ऐसा कोई भी नहीं होगा जो पाणिनि का अष्टाध्यायी को न जानता हो । आज कल संस्कृत भाषा के जितने व्याकरण प्रचलित हैं सब के मूल यही प्रसिद्ध पाणिनि जी हैं । पर खेद का विषय है कि इस अत्यन्त प्राचीन सब भाषाओं की मातृ भाषा संस्कृत के नियम पूर्वक व्याकरण बनाने वाले महा पुरुष की जीविनी आदि के विषय में लोग कुछ भी नहीं जानते । निःसन्देह ये महाशय अत्यन्त विद्वान् थे केवल इतना ही कहना पर्याप्त नहीं है वरन ये ऋषि हैं । केवल रामायण, महाभारत और पुराणों को छोड़ और संस्कृत ग्रन्थों में आर्ष प्रयोग अर्थात् पाणिनि रचित व्याकरण द्वारा प्रसिद्ध प्रयोग नहीं मिलता । पाणिनि ऋषि थे केवल इतना ही कहके उन्हें अति प्राचीन जन समझ के उनके समय के सम्बन्ध में विचार न करना बहुत ठीक नहीं जान पड़ता । अतएव आज कल के विद्वज्जनों ने पाणिनि के विषय में जो कुछ विचार किया है उसे भी देखना चाहिये ।

प्रोफेसर मेक्समुलर के कथनानुसार पाणिनि कात्यायन वररुचि के समकालीन और सन् ईस्वी से ३५० वर्ष पूर्व के व्यक्ति जान पड़ते हैं । कात्यायन वररुचि का वर्णन ऊपर हो चुका है और वहीं पर पाणिनि

को भी प्रायः उनका समसामयिक भी कहा है । मैक्समुलर अपने इस अनुमान का प्रमाण सोमदेव भट्ट रचित कथा सरित्सागर को उत्थापित करते हैं । पर कथा सरित्सागर कहां तक ऐतिहासिक विषयों में प्रमाणिक हो सकता है इसमें घोर सन्देह उपस्थित होता है । क्या कश्मीर ही में रचे जाने के कारण कथा सरित्सागर राज तरङ्गिणी के समान प्रमाणिक ग्रन्थ मान लिया जा सकता है ? क्या सोमदेव भी कल्हण की नाईं इतिहास लिखने बैठे थे ? जहां तक ज्ञात हो सकता है केवल मात्र इतनाही विदित होता है कि कश्मीर के महाराज अनन्त देव की पटरानी सूर्यवती के मनस्तोष के लिये सोमदेव ने कथा सरित्सागर नाम ग्रन्थ रचा । इसका यह तात्पर्य नहीं हो सकता कि मनस्तोष के लिये इतिहास रचा । फिर भी ग्रन्थ ऐसी कहानियों से भरा हुआ है जिनका मूल ऐतिहासिक समझना बड़े भूल की बात होगी इन्हीं कात्यायन वररुचि ही के वर्णन प्रकरण में प्रोफेसर मैक्समुलर ने कुछ बातों को ऐतिहासिक सत्य अनुमान किया है पर औरों को नहीं—जान नहीं पड़ता कि ऐसे अनुमानों का नियामक क्या है ? मैक्समुलर साहिब का अनुमान यहाँ तक बतलाता है कि पाणिनि के समय तक हिन्दुस्तान के लोगों को लिखने की विद्या का ज्ञान था अर्थात् सन् ईस्वी से ३५० वर्ष पूर्व तक हिन्दुओं को लिखना पढ़ना नहीं आता था । गोलडस्टुकर साहिब ने इस अनुमान की भूल दिखलाने के लिये बड़ा परिश्रम किया है तथा पाणिनि के ग्रन्थ के शब्दों द्वारा इसके विरुद्ध मत सिद्ध होने के प्रमाण दिखलाये हैं । वे शब्द नीचे लिखे जाते हैं—

यवनानी—अर्थात् यवनों की लिखावट.

लिपिकर—अर्थात् लिखने वाला.

पाटल, काण्ड, सूत्र, और पत्र—जिन शब्दों से मुख्य कर वृक्ष के अवयव का निर्देश होता है पर असंभव नहीं कि पुस्तक के भी सम्बन्ध में इनका प्रयोग होता रहा हो ॥

वर्ण और कार–ये शब्द अक्षरों के लिये हैं।

लोप–अक्षर का लुप्त वा दृष्टि से बहिर्गत होना इत्यादि इत्यादि.

इन शब्दों को देखने और उनके ग्रन्थों के विचारने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पाणिनि के समय में भी भली भाँति लिखने का प्रचार रहा होगा। गोल्डस्टुकर साहिब कहते हैं कि संभव है कि जिस समय यूनान देश में प्लेटो और एरिस्टाटल सरीखे प्रसिद्ध ग्रन्थ लेखक उन्नति को प्राप्त हुए हों उस समय में हिन्दुस्तान वाले लिखने की ऐसी अत्यन्त उपयोगी विद्या को न जानते रहे हों? मैं तो अपनी समझ भर इसके उत्तर में कहूंगा कि नहीं और फिर पाणिनि के रचित ग्रन्थ में जो उपरोक्त शब्द आये हैं वे सिद्ध करते हैं कि पाणिनि के समय में लिखना प्रचलित था॥

निदान पाणिनि के समय निर्णय के विषय में मैक्समुलर साहिब का सिद्धान्त गोल्डस्टुकर साहिब के कथनानुसार अशुद्ध प्रतीत होता है पर आश्चर्य की बात है कि बोथलिङ्क साहिब भी पाणिनि को सन् ३५० वर्ष पूर्व का व्यक्ति समझते हैं उनका कथन है कि कश्मीर के इतिहास राजतरंगिणी में लिखा मिलता है कि अभिमन्यु ने चन्द्र तथा और २ वैयाकरणों को पतञ्जलि विरचित महाभाष्य को कश्मीर में प्रचलित करने का आदेश दिया। अभिमन्यु का समय सन् ईस्वी से १०० वर्ष पूर्व है अतएव पाणिन के सूत्रों पर महाभाष्य रचा गया उसे और ५० वर्ष पिछला अर्थात् सन् ईस्वी से १५० वर्ष पहिले का रचा मान लेने में कोई भी बाधा नहीं है। पतञ्जलि और पाणिनि के बीच में और तीन वैयाकरण अर्थात् परिभाषा के रचयिता कात्यायन, कारिका के रचयिता और स्वयं पाणिनि हैं। यदि प्रत्येक वैयाकरण के लिये ५० वर्ष का समय रख दिया जाय तो कथा सरित्सागर के निर्णयानुसार पाणिनि का समय सन् ईस्वी से ३५० वर्ष पहिले आ पहुंचता है। बोथलिङ्क साहिब के इस अनुमान को गोल्डस्टुकर साहिब बहुत दुर्बल

समझ के उसकी उपेक्षा करते हैं।

गोल्डस्टुकर साहिब का मत है कि पाणिनि कात्यायन की अपेक्षा प्राचीन व्यक्ति हैं इसकी सिद्धि में वे निम्न लिखित चार युक्तियाँ दिखलाते हैं-

(१) कुछ शब्द पाणिनि के समय में प्रचलित तथा व्याकरणानुसार सिद्ध थे पर कात्यायन के समय में वे अप्रचलित वा अशुद्ध हो गये॥

(२) कात्यायन के समय में कुछ शब्दों के ऐसे अर्थ लगाये जाने लगे जैसे कि पाणिनि के समय में नहीं लगते थे॥

(३) शब्द और उनके अर्थों का जैसा प्रयोग पाणिनि के समय में था वैसा पीछे कात्यायन के समय में न रह गया॥

(४) संस्कृत विद्या ने कात्यायन के समय में एक नवीन अर्थात् पाणिनि के समय से भिन्न रूप धारण किया॥

इन युक्तियों के सिद्ध करने में गोल्डस्टुकर साहिब ने पाणिनि रचित अष्टाध्यायी के सूत्रों का उदाहरण प्रमाण की नाईं उठाया है उनके देखने से संभव जान पड़ता है कि पाणिनि और कात्यायन दोनो के समय में संस्कृत व्याकरण की एक ही दशा न रही होगी। अतएव उक्त महाशय का यही मत है कि पाणिनि कात्यायन की अपेक्षा प्राचीन हैं॥

गोल्डस्टुकर साहिब आगे कहते हैं कि पाणिनि के ग्रन्थों से नहीं विदित होता कि उनके समय में वेद का आरण्यक भाग प्रचलित था क्योंकि उनके ग्रन्थ में आरण्यक शब्द का अर्थ बन में रहने वाला मनुष्य है पीछे से इस शब्द का अर्थ बन का मार्ग, बनैला हाथी बनैला सियार आदिक भी हो गया। पर अब इस "आरण्यक" शब्द का प्रचलित अर्थ लोग वेद का वह भाग बतलाते हैं जो उपनिषदों के पूर्व रचा गया। ऐसे आरण्यक ऐतरेयारण्यक बृहदारण्यकादि बहुत से

हैं। पर पाणिनि ने आवश्यक का यह अर्थ नहीं किया तो इससे क्या संभव है कि पाणिनि को यह अर्थ विदित न रहा हो? और उनके ग्रन्थ में इसका अर्थ का उल्लेख न मिलने पर भी क्या संभव है कि उस समय वेद के वे भाग न रहे हों वा पाणिनि उन्हें जानते न रहे हों॥

इसी प्रकार गोल्डस्टुकर साहिब नाना प्रकार के प्रमाणों का उपन्यास करके सिद्ध करना चाहते हैं कि पाणिनि को निम्नलिखित ग्रन्थ विदित नहीं थे अथवा केवल इतनाही नही उनके विदित रहने का पता पाणिनि के ग्रन्थ से नहीं लगता वे ग्रन्थ ये हैं॥

वाजसनेयी संहिता, शतपथ ब्राह्मण, उपनिषद्, अथर्ववेद और छओ दर्शन अर्थात् पूर्व और उत्तर मीमांसा (वेदान्त), सांख्य, योग न्याय तथा वैशेषिक॥

पर इनका ऐसा सिद्धान्त कहां तक ठीक हो सकता है इसमें वैसाही सन्देह है जैसा कि पाणिनि के सन् ईसवी से ३५० वर्ष पूर्व मान लेने में पड़ता है। वास्तव में हिन्दू पण्डितों के विश्वास अनुसार व्यास, जैमिन, कपिल गौतम और कणाद आदि की अपेक्षा पाणिनि नवीन ही जंचते हैं। हां पतञ्जलि चाहे उनसे पीछे माने जावें क्योंकि महाभाष्य के रचयिता हैं॥

गोल्डस्टुकर साहिब के मत में प्रतिशाख्य और फिट् सूत्र पाणिनि से प्राचीन हैं। उणादि गण और धातु पाठ की मूलभित्ति उन्ही की रचना है पर उणादि सूत्र पाणिनि की अपेक्षा नवीन हैं। इन सब का पता लगाने से संस्कृत विद्या की उन्नति व प्रचार में पाणिनि कैसे सहायक थे यह तो विदित हो सकता है पर पाणिनि के समय के विषय में सन्देह बनाही रहता है॥

पाणिनि के ग्रन्थ में यास्क का नाम मिलता है। उपसर्ग की परिभाषा निरुक्त में मिलती है पर पाणिनि ने पृथक् उसकी परिभाषा

नहीं लिखी अनुमान होता है कि पाणिनि ने निरुक्तवाली प्रचलित परिभाषा को पर्याप्त समझ और लोगों के बीच प्रसिद्ध देख उसे छोड़ दिया हो। यास्क पाणिनि की अपेक्षा प्राचीन हैं ॥

पाणिनि बुद्ध की अपेक्षा भी प्राचीन होंगे पर कितने प्राचीन थे यह निर्णय नहीं हो सकता। बुद्ध का जन्म काल प्रायः सन् ईस्वी से ६२३ वर्ष पूर्व अनुमान किया जाता है। अतएव पाणिनि सन् ६२३ ई० से अधिक प्राचीन व्यक्ति होंगे। पर यह नहीं कह सकते कि यह बात कहां तक प्रमाण सिद्ध मानी जा सकती है ॥

पाणिनि का निवासस्थान गान्धार देश में शलातुर नामक स्थान था और उनकी माता का नाम दाक्षी था पतञ्जलि लिखते हैं—

"सर्वे सर्वपदा देशा दाक्षी पुत्रस्य पाणिनेः"

श्री युत महाशय रमेशचन्द्र दत्त के अनुमान से पाणिनि का समय सन् ईस्वी से पूर्व ८वीं सदी में होता है और यास्क उन से भी सौ वर्ष पहिले हुये थे। यद्यपि इस बात का कोई पक्का प्रमाण नहीं मिलता है कि पाणिनि का ठीक २ समय वही है जो दत्त महाशय ने निर्देश किया पर बहुत संभव है कि पाणिनि लगभग उसी समय के रहे हों। क्योंकि यदि कात्यायन का समय सन् ईस्वी से ३५० वर्ष पूर्व माना जाय तो असंभव न होगा कि अष्टाध्यायी सरीखे व्याकरण ग्रन्थ के भारत में प्रचार होते विशेष समय अपेक्षित हुआ हो ॥

पाणिनि नाम के एक कवि भी सुनने में आते हैं जिनके रचित श्लोक वल्लभ देव द्वारा संगृहीत सुभाषितावली में उल्लिखित देखने में आते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ये कवि दाक्षीपुत्र वैयाकरण पाणिनि से भिन्न हैं। पीटर्सन साहिब ने अपनी प्रकाशित सुभाषितावलि में इनका उल्लेख किया है।

पाणिनि रचित श्लोक यथा—

क्षपाः क्षामीकृत्य प्रसभमपहृत्याम्बुसरितां प्रतार्योर्वीं कृत्स्नां तरुगहनमुच्छोष्य सकलम् । क्व संप्रत्युष्णांशुर्गत इतिसमालोकनपरास्तडिद्दीपालोका दिशिदिशि चरन्तीह जलदाः ॥

ऊपर के श्लोक में ग्रीष्म का अन्त बर्षा का प्रारंभ बहुत अच्छा वर्णन किया गया है ॥

विलोक्य संगमे रागं पश्चिमायाः विवस्वतः ।
कृतं कृष्णं मुखं प्राच्या नहिनार्यो विनेर्षया ॥

सरोरुहाक्षीणि निमीलयन्त्या रवौ गते साधुकृतं नलिन्या अक्ष्णां हि दृष्टापि जगत्समग्रं फलं प्रियालोकनमात्रमेव ।

प्रकाश्य लोकान्भगवान्स्वतेजसा प्रभादरिद्रः सवितापि जायते । अहोचला श्रीर्बलमानदामहीस्पृशन्ति सर्वं हि दशाविपर्यये ॥

ऐन्द्रं धनुः पाण्डुपयोधरेण शरद्दधानार्द्रनखक्षताभम् ।
प्रसादयन्ती सकलंकमिन्दुं तापं रवेरभ्यधिकं चकार ॥

ये श्लोक बड़ी उत्तम कविता के हैं इससे प्रगट है कि उनकी कवित्व प्रतिभा भी बड़ीही उत्कृष्ट थी ॥

———०———

सूक्तिसंग्रह।

वर्ण क्रम से

अकरुणत्वमकारणविग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा।
स्वजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्॥ १॥

निर्दयी पन, बिना कारण लड़ाई, पराई स्त्री पराये धन की इच्छा; अपने लोग तथा बन्धु बान्धवों की बातों को न सहना इतनी बातें दुष्ट मनुष्य में स्वभावही से होती हैं॥

अकर्तव्येष्वसाध्वीव तृष्णा प्रेरयते जनम्।
तमेवसर्वपापेभ्यो लज्जा मातेव रक्षति॥ २॥

जो काम करने योग्य नहीं है उस ओर तृष्णा मनुष्य को असाध्वी स्त्री के समान प्रेरणा करती है और लज्जा माता के समान उस ओर जाने से बचा लेती है।

अकर्मशीलं च महाशनं च लोकद्विष्टं बहुमायंनृशंसम्।
अदेशकालज्ञमनिष्टवेशमेतान् गृहे नप्रतिबासयेत॥ ३॥

आलसी, निठल्लू, बहुत खाने वाला, जो सबों से द्वेष रखता हो कपटी कुटिल, कठोर चित्त, देश काल को न समझनेवाला, जो मनहूस भेस से रहता हो, इन सबों को अपने घर में न टिकने दे॥

अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः।
शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा॥ ४॥

जो बिना कारण बिगड़ उठते हैं और बिना हेतु के प्रसन्न हो जाते हैं ; इस तरह के लोगों को भलेमानुस न कहना चाहिये उनका स्वभाव मेघ का सा चंचल होता है जो वायु से प्रेरित हो इकट्ठे हो जाते हैं फिर तुर्त ही छिन्न भिन्न भी हो जाते हैं ॥

अकस्मात् द्वेष्टि यो भक्तमाजन्मपरिसेवितम् ।
नव्यं जते रुचिर्यस्य त्याज्यो नृप इवातुरः ॥ ५ ॥

रोग पीड़ित के समान ऐसा राजा छोड़ देने योग्य है जो जन्म से सेवा करने वाले अपने भक्त खैरखाह से द्वेष रखता है, जिसकी रुचि नहीं प्रगट होती कि किस बात से महाराज प्रसन्न होते हैं—रोगी के पक्ष में भक्त के अर्थ भोजन या भात है रोगी की रुचि भी घट जाती है ॥

अकांचनेऽकिंचननायिकाङ्गके किमारकूटाभरणेन न श्रियः ॥ नैषध

जिस नायिका के अंग में सोने के गहने मयस्सर नहीं हैं तो क्या पीतल के गहनों से उसके अंग की शोभा नहीं हो सक्ती ॥

अकाण्डपातोपनतं कं न लक्ष्मीर्विमोहयेत् ॥ कथा सरि०

दाने २ को मुहताज जिसके पास कभी कुछ न था वह एक बार बहुत सा धन पा जाय तो कौन ऐसा पुरुष होगा जो अपने को न भूल जाय ॥

अकारणद्वेषि मनोस्ति यस्य वै कथं जनस्तं परितोषयिष्यति

जिसका मन बिना कारण द्वेष युक्त है उसे कोई क्योंकर प्रसन्न कर सक्ता है ॥

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद्धि कुरुते किंचित्तत्कामस्य चेष्टितम्॥ ६॥ मनु

जो निष्काम हैं उनका किया हुआ कोई काम नहीं देखा जाता—मनुष्य जो कुछ करता है वह सब कामना के पर तंत्र हो॥

अकाण्डपातजातानामार्द्राणां मर्मभेदिनाम्।
गाढशोकप्रहाराणामचिन्तैव महौषधम्॥ ७॥

अकस्मात् उपस्थित ताज़ा और मर्मभेदी शोक का कुछ खयाल न करना ही उसकी बड़ी औषधी है॥

अकारणाविष्कृतवैरदारुणादसज्जनात्कस्य भयं न जायते। विषं महाहेरिव यस्य दुर्वचः सुदुस्सहं सन्निहितं सदा मुखे॥ ८॥ बाणभट्ट

बिना कारण दारुण बैर प्रगट करनेवाले दुर्जन से किसे भय नहीं होता—भयङ्कर सर्प का सा बिष तुल्य बचन सदा जिसके मुख पर रहता है॥

अकार्यं तथ्यं वा भवति वितथं वा किमपरं प्रतीते लोकेस्मिन् हरति महिमानं जनरवः। तुलोत्तीर्णस्यापि प्रकटनिहताशेषतमसो रवेस्तादृक् तेजो नहि भवति कन्यांगतवतः॥ ६॥

जो काम करने योग्य नहीं है वह सत्य हो वा झूठ उस पर लोगों को प्रतीत हो जाती है तो वह लोकापवाद के रूप में हो उस काम के करनेवाले के गौरव को कम कर देता है—सूर्य तुला राशि के हो मानो तुला पर भर तौल लिये गये हैं तौभी पहले कन्या में गये कन्या

गमन कर चुके यह अपवाद जो लगा तो अब संपूर्ण अन्धकार को दूर करते हैं तौ भी उनका वैसा तेज नहीं होता जैसा कन्या के सूर्य होने के पहिले सिंह आदि राशियों पर था ॥

अकाले कृत्यमारब्धं कर्तुर्नार्थाय कल्पते ।
तदेव कालमारब्धं महते ऽर्थाय जायते ॥ १० ॥

कुसमय में जो काम किया जाता है वह करने वाले को कोई फायदे का नहीं होता—वही जो समय से किया जाता है तो बड़ा लाभकारी होता है ॥

अकालमेघवद्वित्तमकस्मादेति याति च ।

कुसमय के मेघ के समान धन आता है और चला भी जाता है—

अकिंचनस्य शान्तस्य दान्तस्य समचेतसः ।
सदासन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ ११ ॥

जो अकिंचन हैं जिनके चित्त में शान्ति है जो इन्द्रियों को दमन किये हैं वे जहां जांयगे वहां ही उन्हें सुख है ॥

अकिञ्चनस्य शुद्धस्य उपपन्नस्य सर्वतः ।
अवेक्षमाणस्त्रींल्लोकान्न तुल्यमिहलक्षये ॥ १२ ॥ भारत

जो निष्किञ्चन हैं बाहर भीतर से शुद्ध हैं जो सब ओर से पूर्ण हैं तीनो लोक को देख डालने पर भी हम उनके समान किसी को नहीं पाते ॥

अकीर्तिं बिनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः ।
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ १३ ॥

विनय अपयश को दूर करता है अर्थात् जो नम्र हैं उनकी निन्दा कोई नहीं करता—पराक्रम से अनर्थ नही होने पाता तात्पर्य यह कि जो राजा पराक्रम रखता है वह अनर्थ नहीं होने देता—क्षमा क्रोध को हटा देती है आचार कुलक्षण दूर कर देता है॥

अकीर्तिर्निन्द्यते देवैः कीर्तिर्लोकेषु पूज्यते।
कीर्त्यर्थं तु समारंभः सर्वेषां सुमहात्मनाम् ॥१४॥

अकीर्ति को देवता लोग निन्दते हैं कीर्ति को सब लोग पूजते हैं बड़े लोगों के बड़े २ काम कीर्ति ही के लोभ से किये जाते हैं॥

अकीर्तिर्यस्य गीयेत लोके भूतस्य कस्यचित्।
पतत्येवाधमांल्लोकान्यावच्छब्दः प्रकीर्त्यते ॥ १५ ॥

जिसकी निन्दा संसार में सब लोगों से की जाती है वह तब तक अधम लोक नरक आदि में पड़ा रहता है जब तक उसकी निन्दा सब लोग करते रहते हैं॥

अकीर्तेःकारणंयोषित् योषिद्वैरस्य कारणम्।
संसार कारणं योषित् योषितं वर्जयेत्ततः ॥ १६ ॥

स्त्रियां निन्दा का कारण होती हैं, बैर का कारण होती हैं, संसार का कारण भी वही हैं इससे उनका त्यागही उचित है॥

अकुले पतितो राजा मूर्खपुत्रोहि पण्डितः।
निर्द्धनस्य धनप्राप्तिस्तृणवन्मन्यते जगत् ॥ १७ ॥

नीच कुल में राजा हो जाना मूर्ख का पुत्र पण्डित और निर्द्धन धन पाय जाय तो वह जगत् को तृण तुल्य मानने लगता है॥

अकुलानां कुले भावं कुलीनानां कुलक्षयम् ।
संयोगं बिप्रयोगं च पश्यन्ति चिरजीविनः ॥१८॥

बड़ी उमर तक जीने वाले इन बातों को बहुधा देखते हैं-जे। किसी गिन्ती में न थे पीछे बड़े कुलीन हो गये ; जो कुलीन थे उनके कुल में कोई भी न रह गया; कितने नये २ लोग आकर मिले और कितनों का बिछोहा हो गया ॥

अकुलीनः कुलीनो वा मर्यादां यो न लंघयेत् ।
धर्मापेक्षी मृदुर्दान्तः सकुलीनशताद्वरः ॥ १९ ॥ व्यासदेव

उच्च कुल का हो चाहो नीच कुल का जो मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता ; धर्म पर दृष्टि रखता है ; स्वभाव का कोमल है और इन्द्रियों को दमन किये है वह सौ कुलीनों से श्रेष्ठ है ॥

अकुलीनोपि शास्त्रज्ञो दैवतैरपि पूज्यते । चाणक्य

नीच कुल में पैदा भी जो शास्त्र जानता है उसे देवता भी पूजते हैं।

अकुलीनोपि मूर्खोपि भूपालं योत्रसेवते ।
अपिसन्मान हीनोपि सर्वत्र परिपूज्यते ॥ २० ॥

नीच कुल में पैदा हो मूर्ख हो पर राजा का मुंह लगा हो तो सन्मान हीन हो कर भी सब लोगों से प्रतिष्ठा पाता है ॥

अकृतागसमपि रामो बालिनमन्तर्हि तश्छलेनैव ।
सख्युर्जघान शत्रुं सुहृद्रिपुं भावयेद्रिपुवंत् ॥२१॥ गु०क०

यद्यपि बानरों के राजा बाली ने रामचन्द्र जी का कुछ भी अपराध न किया तथापि उसे उन्हों ने अपने मित्र सुग्रीव का अपराधी

जान बध कर डाला इस लिये मित्र के शत्रु को भी शत्रुवत् जानना चाहिये ॥

अकृत्वा हेलया पादमुच्चैर्मूर्द्धसु विद्विषाम् ।
कथंकारमनालम्बा कीर्तिर्द्यामधिरोहति ॥ २२ ॥ माघ

अवज्ञा के साथ शत्रुओं के सिर पर बिना पांव रक्खे बीरता का यश निरावलम्ब हो आकाश और पृथ्वी सब ठौर किस प्रकार फैल सकता है ॥

अकृतप्रेमैव बरं न पुनः संजातविघटितप्रेमा ।
उध्रितनयनो हि यथा ताम्यत्येवं नजातान्धः ॥ २३ ॥

प्रेम का पहिले ही से न होना अच्छा प्रेम बढ़ हो कर फिर दोनों के प्रेम में अन्तर हो जाना उत्तम नहीं-जो पेट से अन्धा पैदा भया है उसे उतना क्लेश नहीं उठाना पड़ता जितना उसे जिसके पहले नेत्र थे पीछे से अन्धा कर दिया गया है ॥

अकृत्वा परसन्तापमगत्वा खलमन्दिरम् ।
अयांचित्वा परं कांचित् यत्स्वल्पमपितद्बहु ॥२४॥

दूसरे को बिना सताये खल के घर बिना गये और बिना मांगे थोड़ा भी मिले तो वह बहुत है ॥

अकृत्वा पौरुषं या श्रीः किंतया पि सुभोग्यया ।
जरद्गवोऽपिचाश्नाति दैवादुपगतंतृणम् ।२५॥ पंचतंत्र

बिना पुरुषार्थ काम में लाये जो धन मिल जाय और उस धन का भोग भी भली तरह किया जाय तो उस धन से क्या-बूढ़ा बैल भी आप से आप आये हुये तृण को खा लेता है-तात्पर्य यह कि धन वही अच्छा जो पुरुषार्थ से संचय किया गया हो ॥

अकृत्यं मन्यते कृत्यम् ।

उसका क्या कहना जिसने बुरे काम को भला काम समझ लिया है ।

अकृत्यं नैव कर्तव्यं प्राणत्यागेऽपि संस्थिते ।
नच कृत्यं परित्याज्यं धर्म एष सनातनः ॥२६॥

प्राण रहै या न रहै ऐसा सन्देह उपस्थित होने पर भी जो काम करने योग्य नहीं है उसे कभी न करै और जो करने योग्य हो उसे त्यागै भी नहीं यह सदा का क्रम चला आया है ॥

अक्रोधेन जयेत् क्रोधं असाधुं सधुना जयेत् ।
जयेत् कदर्यं दानेन जयेत्सत्येन चानृतम् ॥२७॥

शान्त रह क्रोध को जीतै ; असाधु दुष्ट के साथ साधुता कर उस अपने बश में लावै ; जो कदर्य धन का लोभी है उसे धन दे कर अपने आधीन करै ; झूठ को सत्य से दबा ले अर्थात् तुम कितनाही झूठ बोलो पर हम जो सत्य है उससे मुह न मोड़ैं तो उस झूठे का झूठ नहीं चलता ॥

अक्लेशलभ्या हि भवन्त्युत्तमार्था मनीषिणाम् ।

बुद्धिमान् को उत्तम से उत्तम पदार्थ बिना क्लेश उठाये ही मिल जाते हैं ॥

अक्षमः क्षमतामानी क्रियायां यः प्रववर्तते ।
सहि हास्यास्पदत्वं च लभते प्राणसंशयम् ॥२८॥

असमर्थ हो जो अपने को समर्थ मानै किसी काम के करने में प्रवृत्त होता है वह हंसा जाता है और प्राण नाश के संशय में पड़ता है ॥

ऋतुस्तवमञ्जूषा।

इसमें सन्देह नहीं इन दिनों कलकत्ते के माड़वारी बहुत कुछ तरक्की कर रहे हैं विशुद्धानन्द विद्यालय की उन्नति देख मालूम होता है कि माड़वारी थोड़े दिनों में बहुत आगे बढ़ जांयगे-दैव की सानुकूलता से इसके प्रधान अध्यापक पं० उमापति दत्त शर्मा बहुत सुयोग्य अध्यापक और मेनेजर मिल गये हैं उक्त पण्डित जी प्राणपण से विद्यालय की उन्नति में लगे हैं-उन्हो ने इस मञ्जूषा को यहां के बालकों के धर्मोपदेश के लिये रचा है इस तरह की एक पुस्तक का होना अति आवश्यक था इन दिनो के नव युवक प्रारम्भ ही से अंगरेज़ी का अनुशीलन करते २ अगरेज़ीयत के तन्मय हो जाते हैं आशा है इस पुस्तक को भी पढ़ते रहैंगे तो उनमें अगरेज़ीपन इतना अधिक न व्यापेगा इस पुस्तक में जो श्लोक हैं स्मृति और पुराण से उध्रित किये गये हैं उनका केवल भावार्थ दिया गया है शब्दार्थ अनुवाद रहता तो अच्छा होता मिलने का पता पं० उमापति दत्त शर्मा विशुद्धानन्द विद्यालय नं० १५३ हेरिसन रोड कलकत्ता मूल्य ।०)

स्वीकार।

पत्र के सहातार्थ काशी निवासी गङ्गा प्रसाद गुप्त का भेजा १५) धन्यवाद पूर्वक स्वीकार करते हैं॥

हिन्दी प्रदीप

मासिक पत्र

विद्या, नाटक, इतिहास, साहित्य, दर्शन, राजसम्बन्धी इत्यादि
के विषय में हर महीने की पहिली को छपता है ॥

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट ह्वै आनन्द भरै ।
बचि दुसह दुरजन बायुसों मणिदीप सम थिर नहि टरै ॥
सूझै विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामें जरै ।
हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै ॥

जि० २७ । प्रयाग । मई
सं० ५ । । सन् १९०५ ई०

पं० बालकृष्ण भट्ट सम्पादक और प्रकाशक की आज्ञानुसार
पं० रघुनाथ सहाय पाठक के प्रबन्ध से
यूनियन प्रेस इलाहाबाद में मुद्रित हुआ

सभायें पुस्तकालय और विद्यार्थियों तथा असमर्थों से अग्रिम १॥।)
समर्थों से मूल्य अग्रिम ३।=) ——०*०—— पीछे देने से ४।=)

पिछले अङ्कों की पूरी जिल्द फी जिल्द मै पोस्टेज ३)

——:००:——

जि० २७ } प्रयाग { मई,
सं० ५ } { सन् १९०५ ई०

हमारे सब गुण क्यों फीके हो रहे हैं।

"सबै अलोना लोन बिन" हम और और देश वालों के साथ अपनी आर्य जाति का मुकाबिला करते हैं तो इन्हें किसी बात में हेठा नहीं पाते; ऋषि प्रणीत इनका श्रेष्ठ वैदिक धर्म कर्म आचार विचार जगत् भर में सब के ऊपर गाज रहा है; अन्य जातियों में प्रचलित नये २ धर्म अपने मज़हबी उसूलों की छाया साफ २ हमारे उपनिषदों के DOCTRINES शिक्षा और उपदेश की ली है; इसे यूरोप के नामी विद्वान् मोक्ष म्यूलर आदि भी मान गये हैं—यद्यपि चिर काल तक यवनों के सम्पर्क से इनकी कितनी बातें यावनिक हो गई हैं इनकी अनेक

सभ्यता और शिष्टता तथा बहुत से रहन सहन बोल चाल रीति रसम और ब्यौहार में अरब पारस और तुर्किस्तान के दर्जों की दूषित दुर्गन्धि आने लगी है तथापि अब तक जो विशुद्ध आर्यता का अंश उस में बच रहा है वह मोती सा झलकता है अब इन के शिल्प बाणिज्य दस्तकारी तथा भांत २ के हुनरों को लीजिये तो उस में भी यह किसी से हेठे नहीं हैं यद्यपि समुद्र के अपर पारावलम्बी द्वीपान्तर बासी विदेशियों ने अनेक नई २ कल और यंत्रों के द्वारा कारीगरी की चीज़ों को अरज़ां सुलभ और कम कीमत में मिलने लायक कर दिया है पर जो सफाई और जैसी टिकाऊ देश की बनी चीज़ें होती हैं वैसी यंत्र साध्य विदेशी वस्तु कहां? हां वैसी चमक दमक और चन्दरोज़ा चटकीलापन चाहो उसमें न आ सके यंत्र साध्य शिल्पों में भी यहां वाले प्रयत्न कर रहे हैं प्रति बर्ष भिन्न २ प्रान्त के नव युवक जापान में इसकी शिक्षा पाने को जा रहे हैं आशा है थोड़े दिनों में यंत्र साध्य शिल्प में भी ये निपुण हो जांयगे—अब इन के बुद्धि तत्व और दिमागी ताकत की समीक्षा कीजिये तो उसमें भी प्रगट हो जाता है कि वंश परंपरागत इन में उन्हीं प्रातःस्मरणीय पुण्यशील ऋषियों का परम पवित्र शुद्ध बीर्य अब तक दौड़ रहा है जो ऋषि बुद्धि सत्व के सर्वस्व थे तब उन्हीं के वंशधर ये क्यों न दिमागी कूवत में चढ़े बढ़े न रहैं—विज्ञान, दर्शन, कला तथा और २ विद्या अथवा वैज्ञानिक चातुरी का कौन सा हिस्सा बच रहा है जिस में ये विदेशियों के मुकाबिले हेठे रह गये लाचारी है कि गवर्नमेंट की ओर से इन को वही सब बातों के सिखाने में वैसा उदार भाव नहीं प्रकाश किया जाता जैसा अपने हम कौम के साथ किया जाता है तौ भी ये यत्न श्रम और अध्यवसाय से अपनी ओर से नहीं चूकते—अब त्रुटि इन में एक ही बात की है कि मुसल्मान बादशाहों का जुल्म सहते २ SPIRIT जोश इन में बिलकुल बाकी न रहा अब ये "कोउ नृप होय हमे का हानी। चेरी छोड़ न होउब रानी"

वाली कहावत पर पूरा २ अमल कर रहे हैं न जानिये इनका कौन सा पाप का उदय है कि रक्त संचालन करने वाली इन की नाड़ी में गर्मी कहीं बाकी न रही सब तरह पर बुझ से गये हैं जिस के बिना इनकी जितनी बातें सब फीकी हो रही हैं-बर्तमान इन का धर्म कर्म रहन सहन उत्सव तथा रीति रसम कोई ऐसे न बच रहे जिस में से गुलामी की सड़ी बदबू न निकलती हो अधिक तर यह बदबू हमारे पुजाने वाले ब्राह्मणों के तन से निकलती है जिन्हों ने केवल दक्षिणा पुजवाना ब्राह्मणत्व का मतलब या उसूल मान लिया है-हमें बड़ा पश्चात्ताप है कि धर्मशास्त्र और पुराने इतिहासों को देखो और पढ़ो तो यही मालूम होता है कि ब्राह्मणता का निबाहना बड़ी कड़ी बात और लोहे के चने हैं संसार के यावत् सुखों को लात मार पारमार्थिक और आध्यात्मिक उन्नति ब्राह्मणता का मुख्य उद्देश्य है जिसके सामने समग्र पृथ्वी का राज्य भोग भी तुच्छ और नीरस है-पहले के ऋषि जिन में यह ब्राह्मणता थी चक्रवर्ती राजाओं को अपना गुलाम किये थे बड़े २ शूर बीर सूर्य और चन्द्र कुल भूषण उन तपस्वी ऋषियों से नज़र मिलाने की हिम्मत नहीं बांधते थे-यों तो इतिहासों में इन ब्राम्हणों के बड़े २ किस्से गाये हुये हैं जिसे इन दिनों की सभ्य समाज निरी दन्त कथा मानैगी किन्तु इतना हम अवश्य कहेंगे कि संसार की भोग तृष्णा में न फंसा हुआ दमन शील दान प्रतिग्रह से सुयंत्रित चाहो बहुत विद्या न भी पढ़ा हो गायत्री मात्र सार किन्तु सावित्री के जप में सम्यग् निष्णात हो तो ब्राह्मण अपने ब्रह्म तेज से बहुत कुछ कर सक्ता है—हमारे एक मित्र का कथन है कि ब्राह्मणों ही ने इस मुल्क को रौनक दिया था और अब वेही बिगाड़ रहे हैं हमें बहुतही सटीक जंचता है-भोग तृष्णा में फंस पहले ये आप बिगड़े और मूर्ख हो गये पीछे से देश को मूर्ख कर डाला और बिगाड़ा-जब इनकी मूर्खता से इनका मान घटने लगा तब ये अनेक ढोंग रच प्रजा को गुमराह करने

लगे और अपना फाइदा तथा पुजवाना सब के ऊपर रक्खा प्रजा मूर्ख होने से इन्हों ने जैसा कहा वैसा ही करने लगी जिसका परिणाम यह हुआ कि ऋषियों का चलाया हमारा चोखा शुद्ध वैदिक धर्म जिस में कहीं से स्वार्थ की झलक न थी विलुप्त प्राय हो गया ब्राह्मणों का चलाया प्रचलित हिन्दू धर्म जिस में आदि से अन्त तक स्वार्थ लम्पटता भरी है ऊपर हो आया जिसे देख और २ मत के लोग हसते हैं और हमें बेवकूफ बनाते हैं-जब तक लोग मूर्ख थे ब्राह्मणों की भरपूर चल गई अब नूतन शिक्षा के प्रभाव से ज्यों २ लोगों के नेत्र खुलते जाते हैं इनके चंगुल से लोग निकलने का प्रयत्न कर रहे हैं पर इन में ऐसी मूर्खता छाई हुई है कि ये कुछ नहीं समझते बूझते पगुराते हुये केवल दक्षिणा मात्र से प्रयोजन रखते हैं देश पर क्या विपत्ति आई क्यों सब ओर से ऐसी कमज़ोरी छा गई इस का कभी सोच विचार इन के मन में धंसता ही नहीं-कलियुग है युग धर्म के नाम रोते भंग की तरंग में अकर्मण्य निश्चेष्ट बैठे हुये हैं-आश्चर्य क्या हमारा देश फिर कभी को उठै और तरक्की करै किन्तु जब हमारा रूपान्तर हो गया पुराने इजिप्शन ग्रीशन और रोमन्स की भांत हम सर्वथा बिलाय गये तब हमें उस उठने की कौनसी खुशी रही ॥

हमारी भावी भलाई के लिये ब्राह्मणों का चेतना और सुधरना पहिली बात है और वह तभी हो सकेगा जब हमारे दानियों में विवेक आवे और वे सोच समझ दान दें और उन्हीं को या वैसेही काम में अपने धन का नियोग करें जो उस दक्षिणा के अधिकारी हों या जिस बात से उस दक्षिणा का फाइदा समझा जाय देश के प्रत्येक भाग में ऋषियों की प्रणाली के ऐसे ब्राह्मण तैयार किये जांय जो तपः स्वध्याय संपत्ति से पूर्ण हों; बाल्य बिवाह की कुप्रथा जड़ से उखाड़ दी जाय; ब्राह्मण भी संसारिक विषय बासना और भोग तृष्णा से बचे रहैं हर तरह की विद्या विज्ञान में एकता हो जैसा पहले

ब्राह्मण सब के अग्रगण्य रहे वैसा ही फिर हो जांय किन्तु हमारे इस शेखचिल्ली के मनसूबों पर लोग हंसैगे और कहैंगे यह क्या खुराफात बक रहा है ब्राह्मण होने से अपने ही कदहे की खैर मनाता है अस्तु खुराफात की बक है तो थोड़ा और भी सुन लीजिये हमारी कमज़ोरी ने हमें यहां तक भीरु कर डाला कि पुराने लोगों के कदम पर कदम रखते कोई नई बात के करने या चलाने में बिल्कुल हिचकते हैं आगे कदम बढ़ाने की हिम्मत नहीं बांधते कितनी कुरीतें इसी से बद्ध भूल हैं हटाये नहीं हटतीं कि वे पुरखों के समय से चली आई हैं अब यह किस्से कहैं कि बीच के ज़माने के हमारे पुरखे मुसल्मानों के अत्याचार से पीड़ित हो सब भांत हीन दीन किसी काम के न रह गये थे; येन केन उन को अपने बाल बच्चों का प्राण बचाना मात्र सूझा; वे उस समय हुये जब देश में सब ओर अन्धकार छाया हुआ था विद्या और सद्विचार का सब ओर से लोप हो गया था—आज मुसल्मानों ने आय कतल आम किया कल पिण्डारियों ने आय लूटा खसोटा स्वास्थ्य और अमाचैन को लोग तरस रहे थे उस समय उन्हों ने जो रीत चलाई वह सब आपद् धर्म की थीं—अब हमें स्वास्थ्य और अमन चैन है तो क्यों न हम अब आगे को कदम बढावें पर भीरुता जो हमारे रग २ में पैठ गई है वह हमें सब ओर से जकड़े है हमें अत्यन्त अपरिवर्तन शील Conservative कर डाला है जिसने कोई नई बात सोचा और करना चाहा उस पर देश का देश टूट पड़ता है उस बेचारे की कोई फज़ीहत नहीं बचती जो न की जाय बंगाल में विद्या सागर यहां दयानन्द ऐसे दो एक इसके उदाहरण हो गये हैं बेंकटेश्वर सरीखे तो हमारी भी दुर्गति करने में नहीं चूके पर हम बेहयाई से अपनी बात पर हठ किये हुये हैं अस्तु व्यर्थ की बक बक तो हो चुकी अब अपने उस लक्ष्य किये हुये विषय के सम्बन्ध में कहते हैं जिसका अंकुर भी कहीं ढूढने से देश में मिलना कठिन हो रहा है और वह भांत २ की

राजनैतिक व्यवस्था या राजनैतिक चातुरी है कामग्रेस के प्रतिपक्षी हर तरह पर इस का प्रतिबाद करते हैं और यही चाहते हैं कि यह तोड़ दिया जाय इस से कोई उपकार नहीं है व्यर्थ का इतना रुपया साल में खर्च किया जाता है हम कहते हैं मान लो इस से कोई फाइदा नहीं वरन कर्मचारियों के आंख का कांटा यह अलबत्ता हो रहा है किन्तु साल में एक बार राज नैतिक आन्दोलन कैसी भरी बात है साल भर कर्मचारी लोग हर एक प्रान्त में जो अपने मन की कर गुज़रते हैं उस सब का वहां पत्रा खोला जाता है और प्रतिवाद किया जाता है जिस से कुछ तो ज़िन्दादिली लोगों के मन में आती है यह कुछ हर्ज नहीं इसी ज़िन्दादिली के बिना हमारी सब बात फीकी है स्वामी दयानन्द जो हमें पसन्द आते हैं सो क्यों इसी लिये कि उन्हों ने अपना मत राजनैतिक बुनियाद Political basis पर स्थापित किया है पर बीच में आपस की फूट और खण्डन मण्डन में ऐसा फसे कि राजनैतिक कौशल की गन्धि भी न. बच रही प्रत्युत आर्य समाज इस समय बड़ा आपस का विद्रोह फैला रहा है विलाइत में एक छोटी सी बात पर भी देश का देश टूट पड़ता है यहां बड़े से बड़े कानून जिस में प्रजा का करोड़ों का नुकसान हो जाता है और हमारे आगे बढने की जड़ कटती है चुप चाप पास हो जाते हैं किसी को मालूम तक नहीं होता—इसी से हम कहते हैं इसके बिना हमारा सब फीका है अब होना यही चाहिये कि हमारा धर्म कर्म आचार विचार रीति रसम खेल कूद तेवहार बार सब राजनैतिक बुनियाद पर रक्खे जांय जैसे इस समय प्रचलित हैं उन से हमारी राजनैतिक प्रवीणता की जड़ कटती है और कमज़ोरी बढ़ती है स्वजाति वात्सल्य बन्धु प्रेम देश पर ममता आत्म गौरव अपने स्वत्व की पहचान आदि इस के प्राण रूप हैं कौम में ज़ोर आने के समय ये सब बातें पहले आती हैं जिस देश में पूर्ण रीति पर ये सब बातें आ गईं वही देश स्वर्ग है और उस जाति के

लोग स्वर्गीय जीव हैं जापान में इस समय सब बातें देखी जाती हैं तो जापान स्वर्ग और वहां के रहने वाले स्वर्गीय जीव हैं हिन्दुस्तान जिसे पुराण वाले कर्म भूमि और पवित्र क्षेत्र मानते हैं और लिखते हैं कि देवता लोग भी ललचाते हैं कि इस कर्म भूमि में आय जन्म लें और कर्म के द्वारा मुक्ति के अधिकारी हों किन्तु विचार के देखो तो यह नरक से भी अधम और अपवित्र भूमि है जिन को गुलामी की नारकी यातना भोगना होता है वेही यहां आय जन्म लेते हैं अस्तु इस दुख रोने को कहां लौ पल्लवित करते जांय॥

---:o:---

परोपकार।

"परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्"

यह तो सब लोग जानते हैं कि परोपकार बड़ाही सत्कार्य है परोपकार से सामान्यतः यही अर्थ समझा जाता है कि दूसरे के लिये भलाई करना दूसरे को हानि न पहुंचाना इससे बढ़ कर भलाई और क्या हो सक्ती है परन्तु हमारी इस अवनति के समय में परोपकार की कल्पना ही नष्ट होती जाती है हमारे देश में उपकार करने की बुद्धि स्वार्थ साधन सर्वथा निगल बैठा जैसे बने तैसे केवल अपनाही फाइदा अपनाही भला इतना दृढ़ मूल हो गया है कि भाई भाई के मुकाबिले बाप बेटे के मुकाबिले ज़रा अपनी किसी तरह की हानि सहना लोग गवारा नहीं करते फिर भी शहरों में रहने वालों की अपेक्षा ग्रामीणों में परोपकार की बुद्धि बहुत अधिक पाई जाती है-गांव वाले नये आये हुये अभ्यागत की जैसी पहुनाई और सत्कार करते हैं शहर वाले कदाचितही वैसा करते होंगे-ग्रामीणों में यह भूत दया का अंश प्रायः स्वभाव सिद्ध होता है परन्तु वेही दिहात के रहने वाले जब शहर में

आय बस जाते हैं और शिक्षित हो जाते हैं तब वे अपने को ऊंचे दरजे वाले और प्रतिष्ठित समझने लगते हैं जिन को नये क्रम की शिक्षा यही सिखाती है कि ये भीख मांगने वाले बहुधा दूसरों को बोझ हैं और उनके भरण पोषण का व्यर्थ का भार हमारी समाज पर है-ऐसे निरूपयोगी निरुद्योगियों को देना देश में सुस्त काहिल और मुफ़्तखोरों की संख्या बढ़ना है पूस माघ के शीत की असह वेदना से कांपता कोई निरावलम्ब मनुष्य बाबू जी के दरवाज़े पर आवे और अपनी पीड़ित दशा को बयान करे तो बाबू जी अपने जामे के बाहर हो निकल पड़ते हैं और उनके चित्त में भूत दया उत्पन्न होने के पलटे ऐसा कट्टरपन और कठोरता पैदा हो जाती है कि उन्हें उस दीन दुखिया पर उपकार करने की बुद्धि तनिक भी नहीं रहती बड़े अहंकार के साथ उस से कहा जाता है चला जा बक २ मत कर इत्यादि-हा! उस दरिद्री निर्धन के हृदय टुकड़े २ हो गये वह निराश हो अपना सा मुंह ले बाबू जी के द्वार से बिमुख हो चला जाता है बस बाबू जी के हृदय में भूत दया न होने से भलाई न कर सके परोपकार उनके हाथों से न बन पड़ा प्रत्युत उस दीन दुखिया के मन को दुःख पहुंचा दूसरे को पीड़ा पहुंचाना कैसा भारी पातक है—अफसोस शिक्षित बाबू जी इतनी तालीम पर कट्टर कलेजे के बने ही रहे-शिक्षा का फल मानसिक शक्तियों को उन्नति करना है तब बाबू साहब सहानुभूति के ऐसे शत्रु क्यों बन गये? क्या शिक्षित लोगों में दया दाक्षिण्य और उदारता के भाव पैदा करने वाली शक्तियों का सर्वथा अभावही हो गया है? नहीं ऐसा कहने का साहस तो हम नहीं कर सक्ते; सभ्यता की चटनी चाटे हमारे बाबू साहब सुशिक्षित हैं विद्वान् हैं परन्तु जैसी तालीम उन्होंने पाया है वह ऐसीही है जिस में उन्हें अपनेही कदहे की ख़ैर मनाने से फुरसत नहीं मिलती अपना बड़प्पन प्रतिष्ठा किसी तरह निभ जाय इस फिकिर में चूरंचूर हैं; दासत्व के

बड़े अधिकार और महा पद में रह जो धन बटोरा है उस पर किसी का अणु मात्र भी किसी तरह का अधिकार बिल्कुल उन्हे पसन्द नहीं है उनके मन में यही धसी है कि जैसा इंगलैंड की तवारीख में हम पढ़ते हैं कि वहां Poor Law भिखारियों के लिये कानून है जिस्से गवर्नमेंट हट्टे कट्टे तन्दुरुस्तों को रास्ते में भीख मांगते हुये फिरने नहीं देती— उनके लिये एक उद्यम शाला है वहां उन्हें काम करना पड़ता है और उस के बदले उन्हें खाने को दिया जाता है। ऐसाही यदि हिन्दुस्तान में भी कर दिया जाता तो बड़ी भलाई होती और इतने मुलझोरे भिखमंगे जो नित्य आय तंग किया करते हैं उनका ठीक बन्दोबस्त हो जाता बाबू जी एक तरह पर अच्छा सोच रहे हैं किन्तु यहां प्रश्न यह उठता है कि उनकी शिक्षा उन्हें भूत दया के पवित्र विचारों से क्यों अलग कर देती है परोपकार की बुद्धि उनकी शिक्षा के साथही क्यों नहीं आती? इसका कारण यही मालूम होता है कि वह शिक्षा उनके दिमाग़ की कूवत बढ़ाने को मिली है चित्त में बिमल और उज्वल भावों के उदय होने के लिये नहीं। उनका Clear brain परिस्कृत मस्तिष्क उन्हें बादा विवाद काइयांपन सिखलाता है चालाकी और चुस्ती में उनके आगे कोई न निकल जाय न कोई चालाक उन्हें फन्दे में फंसा ले सके इन सब बातों के लिये शिक्षा ने उन्हे तैयार कर दिया है। चित्त की सरलता सिधाई आस्तिक्य तथा श्रद्धा बुद्धि और विश्वास का तो अंकुर भी वहां नहीं जमा तब भूत दया और मनुष्य मात्र से सहानुभूति तो उसी सिधाई और आस्तिक्य बुद्धि तथा विश्वास के अंग हैं क्यों कर वहां स्थान पा सकते हैं। तो निश्चय हुआ अन्तःकरण की वृत्तियों को पवित्र और ऊंचा करने वाली शिक्षा उन्हें नहीं मिली इसी से उस दीन भिक्षुक के सवाल पर उनके मस्तिष्क में ऐसा असर पैदा हुआ और हृदय में नहीं। मस्तिष्क पर असर पड़ने से बादा बिबाद की सूझी किन्तु भूत दया के निर्मल प्रवाह का स्रोत न खुला। मनुष्य के शिक्षा की

पूर्णता तभी कही जा सकती है जब उसकी बुद्धि और हृदय Head and heart दोनो की एक सी उन्नति हो। इस नवीन शिक्षा में मस्तिष्क की समुन्नति भरपूर होती है किन्तु इतर आभ्यन्तरिक शक्तियां जिन पर श्रद्धा और विश्वास की नेव डाली जा सकी है उनका पतनही होता जाता है फलतः भूत दया और पर उपकार हमारी शिक्षित समाज में गुलरी का फूल अथवा आकाश कुसुम सा हो गया हमारी नई समाज का यह दूषित स्वभाव क्योंकर सुधरै उनमे भूत दया कैसे आवे इसका बिचार करना हम अपने पढ़ने वालों ही पर छोड़े देते हैं ॥ इत्यलम् ॥

गणपति जानकी राम दुबे बी. ए., ग्वालियर

किसका बस है कि भारत पर बिपत्ति की अरराहट से बचा रहे

बर्सात के दिनों में जब झड़ी पर झड़ी अठवारों और पन्द्रहियों एक दम के लिये नहीं थमती पृथिवी जलमग्न हो जगत् एकार्णव सा बोध होने लगता है ऐसे समय लोना खाई हुई पुरानी भीत एक बारगी अरराहट के साथ नीचे आ टूट पड़ती है। वैसाही इस समय क्षार क्षारित इस जीर्ण भारत पर जो सब ओर से बृटिश शासन महा पयोधि से प्लावित है न जानिये कौन २ सी बलाय सब ओर से आय अरराहट के साथ टूट रही है। मुद्दतों से प्लेग अपना ज़ोर देखाता ही था लोग अशरण हो बिलबिला रहे हैं और प्लेग के महोदर में जा टूटे पड़ते हैं अकस्मात् काल रात्रि की सहोदर भगिनी सी एक ऐसी रात आई कि अटक से कटक तक ऐसा हिम पात हुआ कि मानो, सम्पूर्ण देश एक दूसरा हिमालय सा बन गया किसान जो सांझ को लह लहे खेत देख घर जाय सुख की नींद सोये थे और आगे के लिये मन में न जानिये क्या२ मनसूबा गांठे हुये थे कि इस बर्ष ईश्वर की देन बहुत अच्छी है देन

पोत से फारिग हो मन माना ख़र्च करेंगे । कोई सोचते थे बैजनाथ जी का भोज करेंगे; कोई बिचारे थे बचऊ दस बर्ष के हो गये हैं इस साल उनका व्याह बड़े फक्काट से करेंगे; कोई मन में गांठे थे गया कर पितरों से उद्धार पावेंगे; इत्यादि अनेक ख़ाब देखते रात कटी सबेरे आय उन्हीं हरे खेतों को करखा सा झौंसा हुआ पाय उन बेचारों के चेहरों पर उदासी छा गई बनियों की बन पड़ी एक दिन पहले जो गेहूं १७ सेर बिक रहा था एक बारगी ११ सेर हो गया क्षिति तल पर कोई खेत न बच रहे जिन में बोये हुये बिरवाओं पर पाला ने न असर किया हो इधर कई साल से लोग महंगी और अकाल के दुःख को भूल गये थे दोनो जून पेट भर भोजन कर मज़े से गुलछर्रे उड़ाने लगे थे उन्हें फिर बरसों तक अन्न का कष्ट सहना पड़ेगा । अस्तु हम अपनी स्वाभाविक सहन शीलता पर आरूढ़ रह सब कुछ सहते ही तो जा रहे हैं तब इस भूकम्प की क्या ज़रूरत थी कि जिस्से करोड़ों का नुकसान हो गया और कई हज़ार आदमी ना पैद हो गये । अच्छा सो भी सही ईश्वरीय कोप है इस्से किसका बस है । बस इस बस की कुछ न पूछिये ईश्वरीय कोप से तो आप बे बस हैं तो बस वाले किस में हैं । क्या लार्ड करज़न ने जो खुले मैदान कनवोकेशन की स्पीछ में आप को फटकार बतलाई तुम्हे झूंठा और नाशाइस्ता कहा उस में कुछ आप का बस था; ? यूनीवरसिटी बिल पास हो गई तालीम का गला घोटा जा रहा है इसमें तुम्हारा बस है ? तिब्बत की चढ़ाई का ख़र्च हिन्दुस्तान से लिया जाय इसमें आप का क्या बस चला ? मेम्बरान म्युनिसिपल घर बैठे मकानों की हैसीयत जैसा चाहा वैसा आंक हौस टैक्स लगा दिया आप क्या कर सके कुछ बस चलाया चला ? घर बैठे पागुर किया करो बस चलने की बात मत चलाओ । हम हिन्दुओं के ग्रन्थों में लिखा है कि प्रजा पर अनेक आधिब्याधि तभी आती है जब राजा प्रजा दोनो को पाप बुद्धि आ घेरती है पर राजा में कोई पाप है सो किस के मुंह

में दांत है कि इतना कहने का साहस कर सकै तो निश्चय हुआ यह सब पाप प्रजा का है किन्तु प्रति दिन के इति वृत्त से प्रगट है कि सब भांत के भोग बिलास और खुश खुर्रमी के ज़ोम में सब तरह पर खुश-हाल विलाइत वालों के मुकाबिले धर्म भीरु फूंक २ पांव रखने वाले पेट की फिकिर में चूरंचूर ये हिन्दुस्तानी किस करतूत के भरोसे पाप करैंगे। "सर्वंहि महतां महत्" जो बड़े हैं उनकी सभी बात बड़े पन की होती है विलाइत इस समय सब बातों में चढ़ी बढ़ी है तो पाप का काम करने में किसी से हेठी है यह कहना मानो उनकी तौहीन करना है। इस लिये तै हो गया कि पाप या पुण्य का फल तो यह कुछ है नहीं वास्तव में यह ईश्वर की ईश्वरता और सर्वज्ञता का निदर्शन है जो जैसी हालत में रहने लायक हैं उन्हें तैसी ही हालत में न रख सका तो उसकी सर्वज्ञता कैसी? जो पावदान के पास बैठने वाले हैं उन्हें कोई गद्दी पर ले जा कर बैठा दे तो बैठने वाले से इतना ज़ब्त न हो सकेगा कि उस रुतबे को सम्हाल सके। ये हमेशा के गर्दखोर नस २ में गुलामी की आदतों से भरे हुये इस लायक नहीं समझे जाते कि सुख चैन से अपना दिन काटें। ईश्वर इन्हें इसी योग्य समझता है कि निरन्तर विविध आधि व्याधि का क्लेश उठाते ही रहें सुख से रहैंगे तो इन को अनेक उन्माद सूझने के अलावा कोई भलाई या बेहतरी मन में न आवेगी इस्से ये इसी के लिये सृजे गये हैं कि बोझ ढोते हुये मालिक की सेवा में लगे रहैं यह प्लेग और भूकम्प सब उसी का अवतरण है॥

काहिलों की जिन्दगी और उनकी दिन चर्या।

वाह काहिली में भी कैसा मज़ा है जिस ने एक बार भी इस मज़े को चक्खा फिर तो आदी हो जाता है। मित्र साथी दोस्त अज़ीज़ जो कुछ कहिये सब उस के लिये यही काहिली है। बात तो यों है

कि हमारी और काहिली की कुछ ऐसी गाढ़ी मैत्री ही मात्र नहीं है बरन हम तो यही समझते हैं कि हम दोनो एक दूसरे के लिये सृजे गये हैं। काहिली हमारे लिये और हम काहिली के लिये। काम करते तो भाई जी डरता है हमें तो अपनी तकिया और क़ालीन से बढ़ कर और कुछ अच्छाही नहीं लगता। उन में न जानिये क्या कशिश है कि कितना ही उस्से अलग होने का साहस करें पर उठा ही नहीं जाता। हमे बहुत दिनों से इस बात की चिन्ता है कि किसी वैज्ञानिक को अपने तकिया और क़ालीन दिखलावें कदाचित् उस में कोई ऐसी अद्भुत शक्ति हो कि उस्से वह कुछ लाभ उठा सके। कभी २ तो ऐसा मन में आता है कि इसमें कोई आकर्षण शक्ति पैदा हो गई है जो सूर्य और पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से भी अधिक है। न्यूटन इस समय होते तो यह कभी न कहते कि पृथ्वी के ऊपर जितनी वस्तु हैं उन में पृथ्वी से कम आकर्षण शक्ति है। क्योंकि आप ही समझिये यदि हमारे बिस्तर में पृथिवी से अधिक आकर्षण शक्ति न होती तो हम क्यों रातो दिन उसमे चिपटे रहते और जभी उठने का यत्न करते तभी गिर पड़ते। हमारे पास इसके लाखों सुबूत हैं। सब से पहले यह कि जब मन्दिरों में बगुला भक्तों की घड़ियालियों की टन टन; भोंर होनेही गंगा स्नान के बहाने बाहर की सैर करने वाली नव युवतियों की पायज़ेब की झन झन, बुड्ढी औरतों का जिन से चला तक नहीं जाता रमुआ की अम्मा और कलुआ की बहन कह २ दूसरों के दरवाजे की कुंढी खट खटाना; मुर्ग़ का बांग देना, कौओं की कांव २ मुल्लाओं का वहशियों की तरह रेंकना; पिसना पीसने वालियों के जांते की घरघराहट; रेलवे स्टेशनों पर बार २ रेल की सीटी से कनपटियों की चैलियों का झरना; और दुनिया के लोगों का अपने २ काम में लगने का हलचल; यह सब होने लगता है उस समय दुर्भाग्य वश यदि कोई शब्द हमारे कान की झिल्लियों से टकराया तो हमे इतना क्रोध आता है कि उस शब्द करने

वाले को जीता न छोड़ें। पर क्या करें अपना कुछ बश नहीं फिर इधर उधर करवट बदल यही सोचते २ सो जाते हैं कि ईश्वर ने केवल रात बनाया होता और सूर्य की जगह केवल सितारों ही को रचा होता तो हम आनन्द से जीवन काटते और आकल्पान्त सोते ही रहते। इतने में फिर जो किसी ने भोर होने की आवाज़ दी और मुझे चौंका दिया तो यही मन में आता है कि उसे जहन्नुम रसीदा करूं मगर उठना! और कुत्ते की तरह उसके पीछे दौड़ना! उः जाने भी दो हम दूसरी करवट बदल लेंगे। मूंज़ी का मुह पिराने लगेगा तो आपही चुप हो जायगा। लेकिन उः आखिर को उठना ही पड़ा। भाई पेट भी बड़ी बुरी बला है ईश्वर भी क्याही ठठोल है कि उसको ऐसी ही ऐसी रचना में मज़ा मिलता है चाहो और २ इन्द्रियों के वेग को रोक भी लो पर पेट के वारेन्ट की तामील में ज़रा भी फर्क आया कि अपना बदला पुलिस के थानेदार के समान ऐसा लेता है कि होश फुर्र हो जाते हैं और बुरी दशा होने लगती है॥

अच्छा भाई चलो इससे फ़राग़त ही हो लें। तो क्या अब नहाना भी होगा? अरे अहमक़ हुये हो रोज़ २ का नहाना करोड़ों रोगों का घर है। नहाना तो दोही है एक तब जब इस दुनिया में आये दूसरे उस दिन जब यहां से कूच करना है। और यह जंजाल तो बाह्मनों का रचा है कि बिना नहाये अन्न न खोटो। भला इन अक़िल के पुतलों से कोई पूछे तो स्नान का भोजन से क्या सम्बन्ध? स्नान में पानी ऊपर से बह जाता है और भोजन में अन्न पेट में जाता है तो सिद्ध हुआ कि भोजन और स्नान में कोई सम्बन्ध नहीं। हां कभी एक या दो अठवारों में जी चाहा और मैल बहुत जम गई तो थोड़ा धो डाला। इस बात में तो हम जैनियों से बिल्कुल सहमत हैं क्योंकि पानी में कीड़े बहुत रहते हैं प्रति दिन नहांय तो जीव हिंसा अधिक होगी

और पाप भागी होंगे। इसी से अब हम तो भोजन करते हैं आप चहो जो सोचा करो॥

ओह! अब जा के छुट्टी मिली। इन औरतों के मारे भी नाकों क्या कानों में दम है। यह नहीं कि जो कुछ खिलाना हो हमारे पास भेज दें कि हम आराम से तकिया के सहारे लेटे २ भोजन कर लें। नहीं! भीतरही उठ के जांय तभी खाने को मिले। वाह रे अक़ल! हमें आज तक इस बात का संदेह ही रहा कि कदाचित् ईश्वर जब औरतों को सांचे में ढालता है तो दिमाग़ की जगह भूसा भर देता है। हमने कई बार चाहा कि किसी स्त्री की खोपड़ी खोल कर देखें तो इसमें क्या २ रहता है। परन्तु मूर्ख और हठीली तो ये होती ही हैं कोई इस बात पर राज़ी न हुई कि अपनी खोपड़ी खुलवावें और विद्या की उन्नति में सहायक हों। इस्से हम भी अज्ञान ही में पड़े रह गये खैर! औरतें जायं भाड़ में हम तो आराम करने को चले॥

अबे सुकुरुआ हुक्का तो ला। हुक्का भी कैसी बला मेरे साथ लग रही है। मगर यार मज़ा भी बड़ा ही आता है। ऐब इतना ही है कि सोने में फ़र्क़ पड़ जाता है। एक बार हम हुक्का पीते २ ऊंघने लगे और सो गये। नैचा हाथ से छूट गया और एक लात जो लगा तो चिलम और हुक्का दोनो कला बाज़ियां खा गये। हमारे इस निरादर से कोयलों की देह में भी आग लग गई। और वे क्रोध से लाल हो कर्कशा स्त्रियों की तरह बिखर गये। बस फिर क्या था हमारे बिस्तर वग़ैरह सब स्वाहा हो गये और हमारी भी बारी आई थी कि गर्मी के मारे चौंक पड़े॥ अच्छा अब दो क़श तो खींच लें फिर देखा जायगा। किसी ने तुलसी दास जी के ढंग पर ठीक कहा है:-

हुक्का पीवो चैन से सोवो वृथा न जन्म गंवावो।
होइहै वही जो राम रचि राखा। तब क्यों तर्क बढ़ाओ॥

अच्छा अब तो आराम करैं। ले जा बे हुक्का!

ऐं क्या ६ बज गये शाम हो गई अच्छा थोड़ा और सो लें फिर तो कहीं दो घंटे बाद आराम करना नसीब होगा। वाह! सोने में भी क्या मज़ा है:-

"जो मज़ा ख़ाबगाह में पाया। न इल्म, दौलत, विसाल में आया"

मच्छड़ों का तो मेरे यहां घर ही ठहरा, खटमल हमारे हम बिस्तर रहते ही हैं, मकड़ियों ने भी दीवारों और हमारी चारपाई के पावों पर अपनी कारीगरी खूब दिखलाई है, झींगुर हमारे यहां अपनी सोहनी सदा गायाही करते हैं, लेकिन इन में से कोई भी हमारे आराम में ख़लल नहीं डाल सकते। बल्कि सतसंग के कारण मच्छड़ों का गान और झींगुरों के तान ऐसे सोहावने मालूम देते हैं कि यदि किसी दिन ये न हों तो हमें सोच होने लगता है॥

मैं रहता हूं नाबदान गली में मेरे घर के पास एक बड़ा दैय्यानहर नाला है। म्यूनीसिपलटी की अत्यन्त कृपा से यहां रातो दिन:-

भरे हैं इत्र नालों में अमी का सोत जारी है।

बिछा है फर्श कीचड़ का अहा! कैसी तैयारी है॥

हमारे घर की दीवारों और किवाड़ों पर कीचड़ और जाले खूब लगे होंगे पर मैंने बहुत दिनों से इन्हें देखा नहीं शायद कुछ फर्क़ पड़ गया हो। कुत्ते और कौवों का हमारे द्वार पर नक़्क़ारख़ाना बैठा होगा। अगर मुझ से कभी मिलने का आप को शौक़ हो तो इस पते को न भूलियेगा। मुझे इस जगह जहां मैं रहता हूं एक बड़ा भारी फ़ायदा है। आप यह तो जानते ही हैं कि मैं शोहरये आफ़ाक़ हूं और मेरी मुलाक़ात का इश्तियाक़ बहुतों को रहा करता है। मगर इस जगह मेरा पता लगाने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ती। बस इसी से मेरे आराम में ख़लल डालने कोई यहां नहीं आता। अच्छा! बहुत हुआ आज हमने जितना कष्ट सहा कदाचित् जब से जन्मे न सहा होगा। और यह सब सिर्फ़ आप के खातिर। तो अब चलें सो रहें फिर तो उठनाही है॥ A. S.

अक्षमालापवृत्तिज्ञा कुशासनपरिग्रहा ।
ब्राह्मीव दौर्जनीशंसद्वन्दनीया समेखला: ॥ २९ ॥

त्रिविक्रम

ब्राह्मणों की सभा और दुर्जन समाज दोनों एकसी नमस्कार के योग्य हैं, इसी को इस श्लोक में श्लेष गर्भित शब्दों के द्वारा बड़ी उत्तम कविता में दिखाया है ॥

अक्षमो ऽसत्यसन्धश्च परदारी नृशंसकृत् ।
पच्यते नरके घोरे दह्यमानः स्वकर्मणा ॥ ३० ॥

जो बरदाश्त करना नहीं जानता; पर स्त्री गामी है; निठुर काम का करने वाला है; वह अपने निकृष्ट कामों से जलता हुआ घोर नरक में जा गिरता है ॥

अक्षरशून्यो ह्यन्धो भवति ।

निरक्षर मूर्ख अन्धा है ॥

अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टमन्तरैवविनश्यति ।
अबीजकमपिक्षेत्रं केवलं स्थण्डिलं भवेत् ॥ ३१ ॥

बीज जो खेत में नहीं पड़ा बीच ही में नष्ट हो जाता है । खेत भी बिना बीज का स्थण्डिल अर्थात् मैदान हो जाता है जिस में सिवा घास के और कुछ नहीं उगता ॥

अक्षोभ्यतैव महतां महत्वस्य विभूषणम् । क-स-सा

क्षोभ का न होना ही बड़ों के बड़प्पन की शोभा है ॥

अखिलेषु विहंगेषु हन्त स्वच्छन्दचारिषु ।
शुक पंजर बन्धस्ते मधुराणां गिरां फलम् ॥ ३२ ॥

जितने पखेरू सब बे रोक टोक आकाश में स्वच्छन्द उड़ा करते हैं। ऐ शुक तू जो पिंजरे में बन्द कर रक्खा जाता है सो यह तेरी मीठी बोली का फल है ॥

अगाधजलसंचारी नगर्वं याति रोहितः ।
अङ्गुष्टमात्रतोयेपि शफरी फर्फरायते ॥ ३३ ॥

अगाध जल में तैरने वाला रोहू घमण्ड नहीं करता छोटी मछली अंगुष्ट मात्र जल में फरफराती है। तात्पर्य यह कि बड़े लोग बड़ी बात कर गुज़रने पर भी घमण्ड नहीं करते छोटे लोग थोड़ेही में फूल उठते हैं

अगुणकणो गुणराशिर्द्वयमिदं [illegible] खलमुखे पतितम् ।
प्रसरति तैलमिवैकः सलिले [illegible] जड़त्वमेत्यन्यः ॥ ३४॥

ऐगुण का एक कण और गुण का समूह अकस्मात् किसी खल के मुख में जा पड़ा पहला जल में तेल सा फैलता है दूसरा जल में [illegible] सा जा कर जम जाता है ॥

अगुणस्य हतं रूपमशीलस्य हतं कुलम् ।
असिद्धेस्तुहता विद्या अभोगस्य हतं धनम् ॥ ३५ ॥

जिस में कोई गुण नहीं उसका रूपवान् होना किसी काम का नहीं शीलवान् न हुआ तो कुल में जन्म व्यर्थ है। जिस को विद्या सिद्ध न हुई उसकी विद्या व्यर्थ है धन पाय भोग न किया तो वह धन व्यर्थ है ॥

अगुरोस्तथा नगन्धिः प्र[illegible] यथाग्निपतितस्य ।

अगर में पहले वैसी सुगन्धि नहीं होती जैसा आग पर रखने से होती है ॥

अग्निकुण्डसमानारी घृतकुंभसमः पुमान् ।
संगमेन परस्त्रीणां कस्य नक्ष्यते मनः ॥ ३६ ॥

स्त्री मानो अग्नि का कुण्ड है और पुरुष घी का घड़ा सा है तब पर स्त्री का संग पाय किस का मन नहीं चलायमान् होता ॥

अग्निदग्धस्य विस्फोटशान्तिः स्यादग्निना ध्रुवम् ।

आग में जला हुआ आगही में सेंकने से ठंढक पाता है ॥

अग्निदाहान्नमे दुःखं न दुःखं लोहताड़ने ।
इदमेवमहद्दुःखं गुञ्जया सहतोलनम् ॥ ३७ ॥

सोना कहता है आग में जो मैं तपाया जाता हूं इसका दुःख मुझे नहीं है हथौड़े से पीटा जाता हूं उसका भी दुःख नहीं है दुःख यही है कि घुमची के साथ मेरी तुलना होती है। सच है अपने से जो हेठा है उसके साथ बराबरी ऐसाही असह है ॥

अग्निं प्राप्य यथा सद्यस्तूलराशिर्विनिश्यति ।
तथा गंगा प्रवाहेण सर्वं पापं प्रणस्यति ॥ ३८ ॥

आग में पड़ जैसा रुई का ढेर जल्द जल जाता है वैसाही गंगा के प्रवाह में सब पाप नष्ट हो जाता है ॥

अग्निरापो स्त्रियो मूर्खाः सर्पा राज कुलानिच ।
नित्यं यत्नेन सेवेत सद्यः प्राणहराणि षट् ॥ ३९ ॥

अग्नि, जल, स्त्री, मूर्ख, सर्प, राजकुल इन छहो का सयत्न सेवन करे ये छहो जल्द प्राण हरने वाले हैं ॥

अग्निर्गुरुर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राम्हणो गुरुः ।
कुलस्त्रीणां गुरुर्भर्ता सर्वत्राभ्यागतो गुरुः ॥ ४० ॥ भारत

द्विजाति ब्राह्मण क्षत्री वैश्य तीनो का गुरु अर्थात् पूज्य अग्नि है

चारो बर्ण का पूज्य ब्राह्मण है कुल बधुओं का पूज्य भर्ता है अभ्यागत सब का पूज्य है ॥

अग्नि[illegible] द्विजातीनां मुनीनां हृदि दैवतम् ।
प्र[illegible] स्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र समदर्शनः ॥ ४१ ॥

[illegible] के देवता अग्नि हैं मुनियों के हृदय में देवता हैं अल्प बुद्धि को [illegible] में देवता हैं समदर्शी को सब ठौर देवता हैं ॥

अग्निस्तेजो महल्लोके गूढस्तिष्ठति दारुषु ।
नचोपयुङ्क्ते तद्दारुयावन्नोद्दीप्यते परैः ॥
स एव खलु दारुभ्यो यदा निर्मथ्य दीप्यते ।
तद्दारु च वनं चान्यन्निर्दहत्याशु तेजसा ।
एवमेव कुले जाताः पावकोपमतेजसः ।
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठे ऽग्निरिव शेरते ॥४२॥

अग्नि प्रकाश युक्त महर्लोक में है काष्ठ में छिपी हुई रहती है। काष्ठ तब तक नहीं काम में लाया जाता जब तक लकड़ी जलाई नहीं गई। वही लकड़ी रगड़ खाय जब जल उठती है तब संपूर्ण बन को जला देती है। ऐसाही कुलीन अग्नि सम तेज वाले क्षमावान् ऊपर से अपने को छिपाये हुए काष्ट में अग्नि के समान रहते हैं ॥

अग्नि[illegible]त्र फला वेदाः शीलवृत्त फलं श्रुतम् ।
रतिपु[illegible]फला दारा दत्त भुक्तफलं धनम् ॥ ४३ ॥

वेद पढ़ने का फल अग्निहोत्र करना है; विद्या उपार्जन का फल शील पालन और, चरित्र का पवित्र होना है; दार परिग्रह का फल रति और पुत्र है; धन का फल उसका भोग करना और दूसरे को देना है॥

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम् ।
प्रज्ञापौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः ॥ ४४ ॥

नास्तिकों के आचार्य वृहस्पति कहते हैं कि अग्निहोत्र तीनो वेद देह में भस्म का पोतना त्रिदण्डी होना ये सब ऐसे लोग जो बुद्धि और पुरुषार्थ रहित हैं अपने लिये जीविका कर रक्खा है ॥

अग्नौ दग्धं जले मग्नं हृतं तस्करपार्थिवैः ।
तत्सर्वं दानमित्याहुर्यदि क्लैव्यं न भाषते ॥ ४५ ॥

आग में जल गया, जल में डूब गया, चोर चुरा ले गया, राजा ने छीन लिया, ये सब दान हैं यदि नामर्दी न आई हो तो ॥

अग्नौ प्रास्तं प्रधूयेत यथा तूलं द्विजोत्तम ।
तथा गंगावगाढस्य सर्वं पापं प्रधूयते ॥ ४६ ॥

आग में रुई पड़ने से जैसा वह जल जाती है वैसाही गंगा में नहाने से सब पाप भस्म हो जाता है ॥

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठति ।
आदित्याज्जायते वृष्टि वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥४७। मनु

आग में जो आहुति पड़ती है वह सूर्य को पहुंचती है सूर्य से वृष्टि होती है वृष्टि से अन्न तब प्रजा ॥

अग्न्याधानेम यज्ञे नं काषायेण जटाजिनैः ।
लोकान् विश्वासयित्वैव ततो लुंपेद्यथा वृकः ॥ ४८ ॥

अग्निहोत्र से यज्ञ से गेरुआ बस्त्र पहन जटा रखाय मृग चर्म ओढ़ ब्रह्मचारी बन लोगों में अपना बिश्वास पैदा कर, तब उन्हें वैसाही ठगै जैसा बीघ बकरियों को ॥

अग्रे गीतं सरस कवयः पार्श्वतो दाक्षिणात्याः ।
पृष्ठे लीलावलयरणितं चामरग्राहिणीनाम् ॥
यद्यस्त्येवं कुरु भवरसास्वादने लंपटत्वं ।
नो चेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ ॥ ४६ ॥

सामने गान होता हो इधर उधर दोनो ओर कवि जन खड़े हुए बिरुदावली पढ़ते हों पीछे पहुंची और चूड़ियों की खनक के साथ चमर डुलाती हुई युवती स्त्रियां हों यदि ऐसा है तो इस संसार के विषयास्वाद में लंपटता भी अच्छी नहीं तो हे चित्त तेरा निर्विकल्पक समाधि में प्रवेश करना ही भला है ॥

अग्रे लघिमा पश्चान्महतापि पिधीयते नहि महिम्ना ।
वामन इति त्रिविक्रममभिदधति दशावतार विदः ॥५०॥
गोबर्द्धन

पहले जिसकी हलकाई हो गई तो पीछे कितना ही बड़े बन जाओ पर हल्का होने की बदनामी दूर नहीं होती विष्णु पहले वामन हो पीछे त्रिविक्रम बने और अपनी ऊंचाई से तीनों लोक में व्याप्त हो गये तौ भी वामन ही कहलाते रहे ॥

अघं स केवलं भुंक्ते यः पचत्यात्मकारणम् ।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत् सतामन्नं विधीयते ॥ ५१ ॥

जो अपने लिये रसोई पकाता है वह केवल पाप भोजन करता है, सज्जन लोग उस अन्न को खाते हैं जो यज्ञ अर्थात् देवता पितर को अर्पण करने से बचता है ॥

अघटितघटितानि घटयति सुघटितघटितानि जर्जरी

कुरुते। विधिरेव तानि घटयति यानि नरो नैव चिन्तयते ॥ ५२ ॥

जिस बात के होने की संभावना नहीं सो हो जाती है जो अवश्य होनहार है सो नहीं होता बिधाता उसी बात को लाय उपस्थित कर देता है जिसे मनुष्य ने कभी सोचा नहीं था ॥

अङ्कमारुह्य सुप्तं हि हत्वा किन्नामपौरुषम् ।

जो अपने गोद में सिर धरे सोता है उसके मार डालने में क्या पुरुषार्थ है॥

अङ्काधिरोपितमृगश्चन्दमा मृगलांछनः ।
केशरी निष्ठुरक्षिप्तो मृगयूथो मृगाधिपः ॥५३॥ माघ

मृग को अपने गोद में लिये हुये है तो चन्द्रमा मृग लांछन कलङ्कित कहा जाता है सिंह मृगों को निठुराई से मार डालता है सो मृगाधिप कहलाता है। सच है "सूधे का मुह कूकर चाटै" (कतहुं सुधाई ते बड़ दोषू)

अङ्कं केपि शशङ्किरे जलनिधेः पङ्कं परे मेनिरे। सारंगं कतिचिच्च संजगदिरे भूमेश्च बिंबं परे। इन्दौ यद्दलितेन्द्रनीलशकलश्याम दरीदृश्यते। तन्मन्ये रविभीत मन्धतमसं कुक्षिस्थमालक्ष्यते ॥ ५४ ॥

चन्द्रबिम्ब में कालिमा की कवि उत्प्रेक्षा करता है। कोई इस कालिमा को कलङ्क की शङ्का करते हैं; कोई मानते हैं कि समुद्र से चन्द्रमा निकला है सो उसी का कीच इस में लगा है; कोई कहते हैं यह कलंक के रूप में मृग है; कोई कहते हैं यह पृथ्वी की छाया है; इन्दु में जो यह दलित इन्द्रनीलमणि का टुकड़ा सी कालिमा देख पड़ती है सो

हम तो यही मानते हैं कि सूर्य की किरणों से भयभीत अन्धकार वहां पुंजीभूत हो जा छिपा है ॥

अङ्गणवेदिर्वसुधा कुल्या जलधिः स्थली च पातालम्।
वल्मीकश्च सुमेरुः कृतप्रयत्नस्य धीरस्य ॥ ५५ ॥

धैर्य धारण कर यत्न में लगे हुये को समस्त पृथ्वी के दूर देश इतने निकट हैं जैसा अपने घर का अंगना; समुद्र एक छोटी सी नदी या नहर है; सुमेरु जो अति ऊंचा माना गया है मिट्टी का एक छोटासा ढेर है॥

अङ्गप्रत्यङ्गजः पुत्रो हृदयाच्चाभिजायते।
तस्मात्प्रियतरः पुत्रो प्रिया एवतु बान्धवाः ॥ ५६ ॥

एक २ अंग से और हृदय से पुत्र पैदा भया है इससे बन्धु जन सबी प्यारे होते हैं पर पुत्र सब से अधिक प्रिय है ॥

अंगं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि नमुंचत्याशा पिण्डम् ॥ ५७ ॥ मोहमुद्गर

अंग गल गये, बाल पक गये, दांत गिर गये, बूढ़े हो लाठी टेक चलने लगे तौ भी आशा से पिण्ड न छूटा "तृष्णैकातरुणायते" ॥

अंगं चन्दनपाण्डु पल्लवमृदुस्ताम्बूलताम्राधरो धारा यन्त्र जलाभिषेककलुषे धौताञ्जने लोचने। अन्तः पुष्पसुगन्धिरार्द्रकवरी सर्वांगलग्नाम्बरं रामाणां रमणीयतां विदधति ग्रीष्मापराह्णागमे ॥ ५८ ॥

चन्दन के पोतने से पिंडोर के रंग का अंग; नये पत्ते सा कोमल पान की ललाई से लाल रंग का होठ; धारायंत्र फौहारे के जल में नहाने से धौतांजन नेत्र; फूलों की महक से सुगन्धि युक्त भीजे हुये चोटी के बाल; सर्वांग में चिपटे महीन कपड़े; सब मिल के गरमी के दिनों में स्त्रियों के अंग की एक अद्भुत शोभा बढ़ाते हैं। थोड़े में ग्रीष्म का अच्छा वर्णन किया गया है ॥

श्रीहत जाकी रही कछुक दिन इत उत डोलत।
हिंदी सुनतहि नाम रह्यो कोउ मुख नहिं बोलत॥
दीपक सम सोइ करि प्रकाश हिय तिमिर नसावत।
प्रकटत सुसमाचार पाठकन मोद बढ़ावत॥
दीखतही जा के सुजन अति आनन्द हिय लावहीं।
पढ़त सरल भाषा सुखद धन धन भट्ट सराहहीं॥

माधव प्रसाद शुक्ल

गौरी पाठशाला के लिये एक अध्यापिका चाहिये जो त्रैराशिक तक गणित और तुलसी कृत रामायण अच्छी तरह पढ़ा सकती हो वेतन योग्यता नुसार १०) से १५) तक॥

मासिक पत्र

विद्या, नाटक, इतिहास, साहित्य, दर्शन, राजसम्बन्धी इत्यादि
के विषय में हर महीने की पहिली को छपता है ॥

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट है आनन्द भरै ।
बचि दुसह दुरजन बायुसों मणिदीप सम थिर नहि टरै ॥
सूझै बिबेक बिचार उन्नति कुमति सब यामें जरै ।
हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै ॥

जि० २७ } प्रयाग { जून
सं० ६ } { सन् १९०५ ई०

पं० बालकृष्ण भट्ट सम्पादक और प्रकाशक की आज्ञानुसार
पं० रघुनाथ सहाय पाठक के प्रबन्ध से
यूनियन प्रेस इलाहाबाद में मुद्रित हुआ

सभायें पुस्तकालय और विद्यार्थियों तथा असमर्थों से अग्रिम १॥=)
समर्थों से मूल्य अग्रिम ३।=) ——०*०—— पीछे देने से ४।=)

पिछले अङ्कों की पूरी जिल्द फी जिल्द मै पोस्टेज ३)

——:००:——

जि० २७
सं० ६

प्रयाग

जून,
सन् १६०५ ई०

कर्णामृत तथा कर्ण कटु ।

कितने शब्द या वाक्य ऐसे होते हैं जो कर्ण कुहर के द्वारा मन में पहुंच एक अद्भुत आनन्द उपजाते हैं उदासीन और विरक्त के चित्त में भी असर पैदा कर देते हैं जो कान में पहुंचते ही उदासीन की सब उदासी को सूर्य के उदय में घने अन्धकार की भांत न जानिये किस खोह में जा छिपा देता है विरक्त और त्यागी सब वैराग्य और त्याग भूल विषय बासना के लासे में फंस पखेरू सा फिर इस बड़े पिंजड़े संसार में आ पड़ता है जहां से यह पहले तीव्र वैराग्य पंख के उग आने पर उड़ भागा था—इसी के विरुद्ध कितने ऐसे अरुन्तुद मर्मस्पृक् कर्कश कठोर

शब्द होते हैं जो कर्ण पुट को बेध हृदय कपाट को सहसा उद्घाटन करते मन में बेकली पैदा कर देते हैं-शान्त शील मुनि की भी शान्ति में बट्टा लगाते हैं-आग में बारूद पड़ने की भांत क्रोध को एकबारगी भड़का देते हैं नहूसत पैदा करते हुये होनहार कोई बड़े अमंगल के सूचक हैं-कर्णामृत जैसा छोटे बालकों की तोतरी बोल; प्रेमपात्र का प्रेमालाप; जिस्के आगे कोकिलाओं का कुहूनाद भी फीका मालूम होता है और भी वर्षा के प्रारम्भ में चातक की पीहो पीहो भोर होते ही पंचम स्वर की लय में वृक्षों पर चिड़ियों की चहचहाहट सेवक के काम से निहाल और प्रसन्न स्वामी का सेवक की सराहना-पति परदेश गया है साध्वी पतिव्रता तन छीन मन मलीन बड़े लोगों की लाज से अपने मन के भावों को छिपाती किसी तरह दिन काट रही है अकस्मात् एक दिन डाकिये ने आय एक पत्री दिया जिसमें प्राणनाथ के दोही एक दिन में आने का शुभ समाचार दिया है कर्ण रसायन उन अक्षरों को सुन पति के बियोग में ग्रीष्म के सूर्य के खरतर ताप से तपी लता सी एकबारगी लहलही हो उठी। कान के बहरे आंख के अन्धे टूटी खाट पर करवट भरते बुढ़ऊ ज़िन्दगी के दिन ठेल रहे हैं किसी ने आके कहा लाला तुम्हारे पर पोता हुआ है अमीरस सा यह शब्द सुनते ही बुढ़ऊ उठ बैठे मंगन हो मन उनका मोर सा नाचने लगा-योगियों की कठिन तपस्या समान दिन रात मेहनत कर इमतिहान दे आये हैं पर एक परचा ज़रा सा बिगड़ गया है हरदम जी खटके में रहता है-किसी दोस्त ने आके कहा हम देख आये हैं पास हुओं की लिस्ट में तुम्हारा नाम सब के सिरे पर है सुनते ही इस्के मन की कुम्हलानी कली खिल उठी-हज़ारों आदमी की भीर ठटाठट्ठ जमा है लम्बे चौड़े हाल में कहीं तिल भर की जगह खाली नहीं है सब लोग इसी इन्तिज़ारी में हैं कि वक्तावागीश कब अपनी मेघ गंभीर वा गिरा में मधुर कोमल समुज्वल शब्दों से मोती की लरी सा पिरोहंगे लोगों की उतकण्ठा जान वक्ता वागीश ने अपना व्याख्यान आरंभ किया चारों ओर

चियर्स की मधुर ध्वनि से हाल गूंज उठा सुनने वालों के मन में आनन्द की ऊर्मि उठने लगी जैसा पूर्ण चन्द्र का उदय देख समुद्र सब ओर से लहराने लगता है वक्ता के एक २ अक्षर में शब्द चातुरी तथा अर्थ चातुरी का उद्गार जान सब लोग मोहित होगये ॥

अब कर्ण कटु को लीजिये-राज कर्मचारियों में सब से प्रधान महाराज एडवर्ड सप्तम के साक्षात् प्रतिनिधि स्वरूप लार्ड करज़न ने हम लोगों को झूठा अशिष्ट दुराचारी आदि न जानिये क्या २ कहा हिन्दुस्तान के रहने वालों में कौन ऐसा होगा जो श्रीमान् के इन कर्ण कटु शब्दों को सुन दुःखी न हुआ और जिसका दिल टुकड़े २ न हुआ हो-किन्तु राज भक्ति प्रजा में ऐसी दृढ़ मूल है कि लोगों ने सब सह लिया कदाचित् श्रीमान् किसी दूसरे देश में होते तो जल्दी ऐसे कुवाक्यों के प्रयोग करने का साहस न कर सके-दो कर्कशा स्त्रियां लड़ रही हैं दांत किरते गाली देते दोनों आपस में ऐसा कोसती हैं जिसे सुन कलेजा फटा जाता है यही जी चाहता है कि दोनों का सिर मुड़वाय मुंह में कालिख पोत अंडमन टापू की पाहुन उन्हें करा दें या चुड़ैलों के स्कूल में तालीम के लिये उन्हें भरती करा दें-बड़े से कुनबे का एक मात्र पोषक सपूत कुल की पताका किसी काम से कहीं दूर देश गया है अचानक तार आया बाबू को प्लेग हो गया कर्ण कटु यह सुनते ही घर के लोग घबड़ा गये हाहाकार मच गया किसी के तन में होश न रहा-दस सभ्य मनुष्य बैठे हैं किसी गुरुतर विषय पर कथोपकथन करते हुये अपना मन रमा रहे हैं अकस्मात् हंसों में कौआ सा कोई कुन्देनातराश अकिल का कोता पर दौलत पास होने से पण्डितंमन्ये वहां पहुंच गया और ऐसे २ अरुन्तुद कर्ण कटु शब्द अपनी बोल चाल में कह डाला कि लोग उद्विग्न हो गये रसाभास होगया सब लोग खिन्न चित हो उठ खड़े हुये इत्यादि बहुत से और उदाहरण सोचने से मिल सकते हैं-पुराने इतिहासों को पढ़ने से प्रगट है कि यह कर्ण कटु अनेक सर्वनाशकारी

घटनाओं का कारण हुआ है "अन्धे के अन्धे होते हैं" द्रौपदी का दुर्योधन के प्रति यही कर्ण कटु महाभारत की जड़ हुआ। लक्ष्मण ने जब रामचन्द्र के पास सूने बन में जानकी को अकेली छोड़ जाने से इनकार किया तब जानकी ने कैसे २ अरुन्तुद वाक्य कहे अन्त में उसका कैसा कुत्सित परिणाम हुआ कि रावण जानकी को शून्य बन में अकेला पाय हर लेगया इत्यादि और भी अनेक उदाहरण इसके मिल सकते हैं॥

रुपया पैदा होने के तीन तरीक़े।

देश में धन बढ़ने के तीन जुदे२ तरीके हैं मेहनत चाकरी और खेती-- इन तीनों में सब से पहिला और उत्तम क्रम धन बढ़ाने का श्रम या मेहनत है--यद्यपि मनु ने तो इसे श्रेष्ठ नहीं माना इसलिये कि हाथ पांव का व्यवसाय करने वाले मेहनतियों को मस्तिष्क से बहुत कम सम्बन्ध रहता है तब दिमाग को काम में लाने वाले पढ़े लिखों की अपेक्षा श्रम जीवियों को नीचा माना है-पर वह कुछ और ही समय था जब मनु महाराज के मस्तिष्क में यह बात धंसी हुई थी-उस समय लोग केवल नौकरी के लिये नहीं पढ़ते थे किन्तु पढ़े लिखे अब के समान बंगले २ ठोकर न खाय देश को शासन करते थे प्रजा में बुद्धि और बिद्या के विस्तार करने के द्वार होते थे-सर्व साधारण को इस लोक में सुख और आराम पहुंचना तो उनको छोटी सी बात थी वरन परलोक का अनन्त अबिनाशीं सुख और मोक्ष पद तक के मिल जाने की चिन्ता में व्यस्त रहते थे-शुद्धाशुद्ध के प्रकरण में "कारुहस्तगतं शिल्पम्" लिखने से प्रगट है कि मनु जी को कारीगरों की कदर भरपूर थी अस्तु जोहो पर अब आज दिन तो देश में धन बढ़ने का एक मात्र बड़ा ज़रिया यही दस्तकारी है-यूरोप ऐसे खण्ड में जहां के देश पर्वत स्थलियों से पूर्ण हैं खेती बहुत कम हो सक्ती है वहां इस तरह प्रति दिन धन बढ़ता ही जाता है और लोग उन देशों के सब तरह पर खुश हाल हैं पेट की चिन्ता को हलकी और छोटी सी बात समझ ऐसे बड़े २ कामों में लगे हैं जो मनुष्य

शक्ति बाहर है जिसे देख कोई ईश्वरीय महिमा प्रगट होती है-हमारे यहां इस तरह के काम करने वाले देवता समझ पूजे जाते विश्वकर्मा देवताओं और मय दैत्यों की कोटि में रक्खे ही गये हैं—नल नील भगीरथ और सगर के साठ हज़ार लड़कों में कैसी इनजीयरिङ्ग की विद्या थी इसे पुराण वालों ने सेतु बन्धन और गंगावतरण के प्रकरण में अनेक क़िस्से गढ़ खूब ही तोपा है—इल्लोरा और इलिफैंटा की खोह तथा दक्षिण में मदूरा और दूसरे अनेक देव मन्दिर हमारे पुराने शिल्प की साक्षी दे रहे हैं-मुसल्मानों के समय में भी आगरे का ताज महल सिकन्दरे के रौज़े की बनावट तथा दिल्ली के कुतुब मीनार आदि भी क्या कम हैं-अब के समय में ऐसी इमारत बनै तो कम से कम ५० तो दो हज़ार की तनखाह वाले अंगरेज़ इनजीनियर नौकर रक्खे जांय और ईट चूना पत्थर के बहाने उस इमारत के तैयार होंने के कुल तख़मीने का आधा रुपया बिलाइत ढो जाय-मेहनत की तरक्की से देश में धन बढ़ाना तो दूर रहा श्रमोपजीवियों की कैसी दुर्गति हो रही है कि पुरानी कारीगरियों के उठ जाने से वे लोग दाने २ को तरसते हैं अपने यहां के पुश्त हा पुश्त के पेशों को छोड़ दूसरा २ काम ढूंढ़ रहे हैं-मेहनत जो वाणिज्य और तिजारत की जननी थी उसकी दुर्गति देख वाणिज्य भय भीत हो यहां से भाग खड़ा हुआ और डरा कि जब हमारी मा की ऐसी दुर्गति हुई तब हम कहां बच सक्ते हैं "अस्तस्याम्बुनिधिं विलंघ्य सहसा नाद्यापि विश्राम्यति" सात समुद्र के पार हो अब तक भागताही जाता है—

धन बढ़ने का प्रथम और सब से बड़ा द्वार मेहनत थी उसका क़िस्सा हमने अपने पाठकों को कह सुनाया अब चाकरी की सूझी किसी तरह पेट तो पलना ही चाहिये अभिमान भंगभूमि दुरन्त पूरा इस उदर दरी के पाटने को सब २ सहना पड़ता है सब २ करना पड़ता है सालों और महीनों दिन २ भर पढ़ और रात २ भर जाग सकल विद्या पारङ्गत

हो अन्त को वही चाकरी सूझी चाकरी में भी टटके से टटका माल सार पदार्थ गौराङ्ग महा प्रभुओं का भोग उच्छिष्ट और दिन रात की पिसौनी प्रसाद की भांत इनके लिये बची यूरोपियन तथा उन्ही के भाई यूरेशियन सौ डेढ़ सौ कभी को दो सौ से शुरू करते हैं पेनशन के दिनों तक में पांच सौ आठ सौ हज़ार तक पहुंच जाते हैं लायक़ से लायक हिन्दुस्तानी बीस पचीस तीस हद्द चालीस से आरंभ कर पेनशन पाने तक में डेढ़ सौ दो सौ अढ़ाई सौ के आगे नहीं जाते सौ में कोई एक दो निकलेंगे जिन्हें पांच सौ छ सौ का आधा पेनशन में मिला है धन पास, होता तो विद्या पढ़ सान पर चढ़ी अकिल को किसी मेहनत की तरक्की में लगाते या दूर२ देशों में पहुंच तिजारत करते देश में धन की पूंजी बढ़ाते पर जो हुई नहीं उसके लिये पछताने से क्या लाभ अब बची खेती सो उसमें धरती का बहुत बड़ा हिस्सा अफीम और नील की खेती में निकल गया जो बचा वह निरा दैवाधीन कभी अतिवृष्टि ने ले डाला कभी अनावृष्टि अथवा पाला या ओला समेट ले गया तब देश में धन किस वसीले बढ़े "षष्ठांशवृत्त्या इव रक्षितायाः" का समय अब न रहा कुल पैदावार का आधे से अधिक देन पोत में निकल जाता है जो बचा वह विदेशों में एक्सपोर्ट हो चला गया उसके बदले जितना बिलाइत का माल यहां इम्पोर्ट होता है उतना नकद रुपया नहीं तब देश में धन की पूंजी कैसे बढ़ सक्ती है—जैसा यहां की धरती उपजाऊ रही और कई करोड़ का धन थोड़े परिश्रम में प्रतिवर्ष उगल देती है वैसा ही यदि मेहनत या देश की कारीगरी तरक्की पर रहती तो यहां का धन देश में न समाता-जब दोनों खेती और कारीगरी बराबर से अपनी पूरी उन्नति पर रहे उस समय इतनी राज खिराजी और लूट मार पर भी धन यहां का कम नहीं हुआ था-घर २ आनन्द बधाई बजती थी लोग सुख चैन से अपना दिन काटते थे-इस समय ब्रिटिश शासन के स्वास्थ्य में भी अनेक आधि व्याधि पीड़ित दरिद्रता और मंहगी का कष्ट उठाते हैं

को भी हम तरस रहे हैं तब देश में धन का बढ़ना कैसा—रुपया पैदा होने के तीन तरीकों में एक भी समूचा न बच रहा तब क्या किया जाय लाचारी है देश में धन के बढ़न की तो आशा ही नहीं की जा सक्ती घटने की संभावना सब भांत है तथास्तु ॥

घड़ी की कुघड़ी ।

(एक विरक्त और बाबू भेड़ियाधसान के बीच बातों की झड़ी)

भेड़िया धसान-गुरुदेव नमो नारायण—

विरक्त—नारायण-भगत जी अच्छे हो ! आज बहुत दिनों में मिले क्या कहीं गये थे ?

भे०-महाराज घरही में तो था क्या करूं दूकान के काम से फुरसत नहीं मिलती आज एकादसी है इससे दूकान बन्द है जी चाहा कि कुछ थोड़ी देर चल फिर आऊं-मेरे अहो भाग्य जो अनायास आप के दर्शन हो गये—

वि०-[स्वगत] दूकान का काम तो भले ही करता होगा-(प्रगट) क्या-भेड़ियाधसान आज तो तुम अपनी स्त्री का हार पहन के आये हो—

भे०-(गले में हाथ फेर) नहीं तो-

वि० तो यह क्या लटक रहा है-

भे०-महाराज आप इतना भी नहीं जानते यह घड़ी का चेन है और घड़ी पाकेट में है (मन में) आज कल के बाबा निरे घोंघा नाथ ही होते हैं—

वि०-अच्छा तो भगत बतला इस समय क्या बजा है ?

भे०—घड़ी जेब से निकाल कान में लगा दो चार बार हाथ से ठोक भी आश्चर्य से ! ! घड़ी तो बन्द हो गई-

वि०-कब से बन्द है ?

भे०-महाराज अभी बन्द हो गई है-

वि-भगत जी छै: महीने हुये होंगे हम तुम दोनों कंपनी बाग़ में बैठे थे कि अचानक नक़ली राम भी आ गया उसने भी ऐसा ही घड़ी कान से लगाई और हाथ से ठोंकी तब तुमने पूछा फ्रेंड! टैम क्या है? उपरान्त तुमने भी वही कवायद कर कह दिया कि मेरी भी घड़ी बिगड़ गई है। इसी घड़ी को हमने ऐसा ही बिगड़ी तुम्हारे बाप की जेब में भी पड़ी देखी थी। हम समझते हैं पोते परपोतों तक यह घड़ी ऐसाही बिगड़ी जेब में पड़ी सड़ा करैगी सुधरैगी नहीं—तुम कहते हौ यह अभी बिगड़ी है पर हम तो इसे कई पुश्त से ऐसाही बिगड़ी देखते हैं कदाचित् इस कवायद को भी तुमने अपने बाप ही से सीखी है॥

भे-महाराज घड़ी साज़ घड़ी सुधराई दो रु० मांगता है थोड़े दिन चल फिर बन्द हो जाती है इससे दो रु० ख़र्च करना फ़िज़ूल है। ड्रेस की नुमाइश बन्द घड़ी सेभी हो जाती है। यदि किसी ने टाइम पूछा तो कवायद हमको आती ही है लाज रह जाती है फिर दो रुपया का जूता क्यों खांय॥

वि—अरे मूर्ख अभी तक तूने यह भी न जाना कि घड़ी ड्रेस की नुमाइश के लिये नही बनी बरन समय का सदुपयोग करने के लिये बनी है। उस पुरुषार्थी की ओर दृष्टि करो जिसने दिनऔर रात के २४ घंटे नियत किये हैं एक घंटे को ६० मिन्टों में बाटा है। इस पर भी उसको शान्ति नहीं हुई एक मिनिट की खाल खींच सेकेण्ड भी नष्ठ करना उसे नहीं भाया तब मिनिट के भी ६० टुकड़े कर डाला वही हमारे लिये घण्टो के घण्टे व्यर्थ बीतते हैं बकवाद मुफ्त की ख़ुराफात में औकात नष्ट हो रही है। तुम सरीखे श्रीमान् हम लोगों में कितने विद्यमान् हैं जिनके घरों में हज़ार बारह सौ की कई एक वाच; पाख़ानों में भी टाइमपीस खटखटाया करतीं है कमरे पीछे एक २ क्लाक लटकी रहती है, रिपेयरर दिन में दो एक बार

सबों की चाभी फेर जाता होगा और इस मेहनत का महीने में सौ पचास लेही मरता होगा। पर हुज़ूर की दिनचर्या देखिये तो उमर की उमर निरर्थक गायब हो गई स्याही गई सफेदी आई पर कभी घड़ी की खट २ ने आप की नींद न जगाई यह ख़याल कभी मन में न आया कि हाय ! इस अमूल्य जीवन के वर्ष महीने दिन घन्टे व्यर्थ क्यों गये क्यों आये ? और क्या कर गये ? इन फर्स्ट क्लास के अमीरों को सच २ वक्त की क़दर नहीं मालूम, दल्लालों ने आंधेरा और पट्टी पढ़ाने लगे हुज़ूर ऐसी घड़ी आज तक नहीं आई ख़ास विलाइत का कारीगर आप को कदरदान जान नोटिस सीधा हुज़ूर के नाम से भेजा है। इसलिये उम्मेद है दो चार घड़ियों के ख़रीदने का हुक्म होगा इन घड़ियों से आप के महल और कोठी की शोभा दोचन्द भड़क उठैंगी अस्तु जैसी देवी वैसी उनकी पूजा जैसे ये फर्स्ट क्लास के अमीर वैसीही उनकी घड़ी बाज़ी- हमे खेद उन सेकेण्ड क्लास की घड़ी बाज़ों पर होता है जो घड़ी जेब में लटकाये चक्कर देना जानते हैं फर्राटे के आर्टिकिल घसीट मारते हैं पर उनकी निज की लीला देखी जाय तो इनकी चलती घड़ी भी कुघड़ी हो रही है केवल दफ़्तर जाने मात्र के लिये सुघड़ी है या कोई अजनबी भेंट को आवै तो उसे यह जताने को कि हमारी घड़ी आ लगी है अब ज़ियादह बात करना नहीं मांगते। नौकर को देखो तो कुघड़ी-घर के बच्चों को देखो तो कुघड़ी-स्त्री को देखो जिसे देखो सबी कुघड़ी के पाबन्द पाओगे। जब सभ्यता की दुम मरोड़ने वालों की ऐसी मिट्टी तब सर्व साधारण की तो बात ही क्या ? पढ़े अनपढ़े नौकर बनिये बक्काल सबी घड़ी लटकाए फिरते हैं। भारत में ३३ करोड़ मनुष्य हैं उनमें से कम से कम एक करोड़ मनुष्यों के पास तो अवश्य ही घड़ी होगी कितनों के पास दो चार छै भी हैं। समझो देश में दो करोड़ घड़ियां हुईं जिसका हिसाब